UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180083

UNIVERSAL
LIBRARY

हिन्दी गद्य रत्न

HINDI GADYA-RATNA

(*Hindi Prose Collections*)

FOR

COLLEGE CLASSES

Edited by

P. R. SREENIVASA SASTRY

Published by :

HINDI SAHITYA SEVA MANDIR

No. 3, S. K. STREET,

CHICKA MAVALLI ·:· BANGALORE-2.

हिन्दी गद्य रत्न

HINDI GADYA-RATNA

(*Hindi Prose Collections*)

FOR

COLLEGE CLASSES

Edited by

P. R. SREENIVASA SASTRY

Published by :

HINDI SAHITYA SEVA MANDIR

No. 3, S. K. STREET,

CHICKA MAVALLI -:- BANGALORE-2.

सर्वाधिकार स्वरक्षित] 1953 [दाम 1—8—0

हिन्दी पुस्तकमाला, पुष्प–18

संस्करण १—मार्च–1963
—३—

मुद्रक
श्री सुजाता प्रिंटिंग वर्क्स, बेंगलोर–२

अपनी ओर से—

आजकल, दक्षिण भारत के स्कूल-कालेजों में हिन्दी का प्रचार जोर पकड़ता जा रहा है। मैसूर, मद्रास, हैदराबाद आदि राज्यों के एस. एस. एल. सी, मैट्रिक, इन्टरमीडियट, विद्वान् आदि परीक्षाओं में हिन्दी को ऐच्छिक तथा द्वितीय विषय के तौर पर लेकर प्रतिवर्ष कई विद्यार्थी बैठते हैं।

स्कूल-कालेजों में हिन्दी का प्रवेश हो जाने से विद्यार्थियों के लिए उपयोगी पुस्तकों की माँग भी बढ़ गयी है। मैं ने इसके पहले स्कूल-कालेजों के लिए कुछ उपयोगी पुस्तकें—'अष्ट-दल' 'हिन्दी प्रदीप'—आदि प्रकाशित की हैं। अब हाईस्कूलों तथा कालेजों के लिए और भी उत्तम पुस्तकें प्रकाशित करने के उद्देश्य से यह पुस्तक प्रकाशित की जा रही है।

इस संग्रह में जीवनियाँ, कहानियाँ, इतिहास, विज्ञान, यात्रा, चिट्ठी-पत्री, एकांकी आदि भिन्न-भिन्न विषय के लेख दिये हैं। विद्यार्थियों के उपयोग के लिए कुछ पाठों के अंत में कठिन शब्दार्थ भी दिये हैं।

इस संग्रह को रोचक बनाने में मैं ने कोई बात उठा नहीं रखी है। आशा है, यह संग्रह दक्षिण के स्कूलों और कालेजों में उचित स्थान पा जायेगा।

मुझसे प्रकाशित अन्य पुस्तकों को जिस तरह अपनाकर पाठकों ने प्रोत्साहित किया था उसी तरह इसे भी अपनायेंगे ही।

जिन लेखकों की कृतियाँ इस संग्रह में दी गयी हैं, उनके मैं बड़ा कृतज्ञ हूँ।

—संपादक.

विषय-सूची

गद्य-भाग

1	मुझ से सब अच्छे—श्री घनश्यामदास बिडला	1
2	हीरा और कोयला—श्री राय कृष्णदास	8
3	वैज्ञानिक भारतीय—(संकलित)	12
4	रूस में बच्चों का जीवन—(रूस की शिक्षा प्रणाली से)	19
5	मौत के मुँह में—श्री राम शर्मा, B.A.,	25
6	विद्यार्थी और लोकसेवा—श्री कृष्णदत्त पालीवाल, M.A.,	33
7	हिमालय की झलक—श्री सियाराम शरण गुप्त	38
8	पंच-परमेश्वर—श्री प्रेमचन्द, B.A.,	49
9	सर्वोदय—(संकलित)	71
10	अरमानों की समाधि—श्री गंगा प्रसाद मिश्र, M.A.,	76
11	सच्चा धर्म—श्री सेठ गोविन्ददास, M.P.	86

मुझसे सब अच्छे

(लेखक :—श्री घनश्यामदास बिड़ला)

मुझे सबेरे टहलने की आदत है। प्रातःकाल की शुद्ध हवा मनुष्यों को नया जीवन देती है। जब-जब मैं घर पर रहता हूँ, सबेरे का भ्रमण एक प्रकार का नियम-सा हो गया है। एक रोज़ सबेरे टहलने निकला तो वायु की परमार्थ-वृत्ति पर विचार करने लगा।

पश्चिमी हवा चल रही थी। मैंने सोचा, यह वायु कितने परिश्रम के बाद यहाँ पहुँची होगी! कहाँ से चली, कितना उपकार किया, इसका अंदाज़ कौन लगावे? भारत का पश्चिमी सागर यहाँ से करीब छः सौ मील की दूरी पर होगा, उसके आगे आफ्रिका तक केवल निर्जन समुद्र ही समुद्र है। संभवतः उससे भी पश्चिम और पश्चिमतर के प्रदेशों से पहाड़ियों, नदियों, समुद्रों, मनुष्यों, जीव-जतुओं को जीवन देती हुई पवन यहाँ पहुँची होगी; और अब यहाँ के लोगों को सुख देती हुई अपने कर्तव्य-पालन के लिए शांत भाव से पूर्व-प्रदेशों की ओर अग्रसर होगी।

मैंने सोचा, यह हवा इतनी सेवा करती है, फिर भी अखबारों में इसकी चर्चा क्यों नहीं आती? हवा से मैंने कहा—हवा, तुम संसार का इतना उपकार करती हो; किन्तु तुम्हारी सेवा की खबर मैं अखबारों में कभी नहीं पढ़ता। तुमको चाहिए कि जो थोड़ी-सी बात करो उसको बढ़ा-चढ़ा के अखबारों में छाप दिया करो।

हवा ने कहा—कौन-सा अख़बार अच्छा है ?

मैंने कहा—हिन्दी-अंग्रेजी के बहुत-से अख़बार हैं, सभी में अपनी प्रशंसा छपाया करो।

हवा ने पूछा—क्या सूर्य-लोक एवं चन्द्र-लोक में भी तुम्हारे यहाँ के अख़बार जाते हैं ?

मैंने कहा—वहाँ तो नहीं जाते।

हवा ने मेरी मूर्खता पर हँस दिया और कहा—तुम पक्के कूप-मण्डूक हो, तुम्हारे लिए थोड़े से लोग ही ब्रह्माण्ड हैं। मैंने तो प्राणिमात्र की सेवा का व्रत ले रखा है, और मेरा अख़बार है ईश्वर का हृदय। वहाँ सब ख़बरें आप-से-आप पहुँचती हैं। भली-बुरी सभी बातें वहाँ छपती रहती हैं, किसी बात का वहाँ पक्षपात नहीं। किसी के कहने से वहाँ कोई ख़बर नहीं छापी जाती; सच्ची ख़बरें वहाँ स्वयं छप जाती हैं। मैं तुम्हारी तरह मूर्ख नहीं कि विज्ञापनबाज़ी के दलदल में फँस जाऊँ। निःस्वार्थ भाव से चुपचाप प्राणिमात्र की सेवा करना, यही मेरा धर्म है और मेरे स्वामि को भी यही प्रिय है। अच्छा हो कि तुम भी मेरा अनुकरण करो।

हवा की यह स्पष्टोक्ति मुझे बड़ी बुरी लगी। मैं, और हवा जैसी जड़ वस्तु का अनुकरण करूँ! मन में आया कि एक व्याख्यान ही झाड़ दूँ, अखबारों में तो उसका अतिरंजित वर्णन छप ही जायगा। परंतु पवन को तो 'लगन लगी पद-पावन की'—उसे

मेरा व्याख्यान सुनने को फुरसत कहाँ ? वह तो अपना गीत गाती हुई शीघ्रता से चल निकली।

तब मैंने अपना सारा क्रोध एक ऊँट पर डाल दिया। बात यह हुई कि रास्ते में एक ऊँट महाशय, अपनी थकान उतारने के लिए, हाथ-पाँव पीट-पीट कर धूल उछाल रहे थे। मैंने गर्द से तंग आकर, क्रोध में ऊँट से कहा—तुम बड़े गँवार हो, पशु तो हो ही, किंतु तुम्हें तमीज़ भी बिलकुल नहीं है। हम लोग जिन रास्तों से होकर निकलते हैं, उनमें ग़रीब मनुष्य भी किनारे खड़े हो कर झुककर हमें प्रणाम करते हैं। हम जब-जब टहलने जाते हैं तब-तब हमारे लट्ठधारी नौकर रास्ते में चलनेवालों का नाकों दम कर देते हैं। तुमने, हमें झुककर प्रणाम करना तो दूर रहा, उलटा धूल उछालना शुरू कर दिया। इससे मालूम होता है कि तुम गँवार भी हो और धृष्ट भी।

इस पर ऊँट ने अपना व्यायाम तो बंद कर दिया; पर मेरी बात को सुनकर वह खिलखिलाकर हँस पड़ा। वह बोला—तुम मूर्ख तो हो ही, साथ ही अभिमानी भी हो। अभी-अभी तुम पवन को उपदेश देने की धृष्टता कर रहे थे। पवन तो आदर्श सेवक है, उसने तुम्हें कुछ नहीं कहा। पर कहीं मुझे उपदेश देने की धृष्टता न कर बैठना! बस, यह समझ लो कि मुझ से तुम बहुत गये-बीते हो।

मैंने कहा—ऊँट, तू पशु होकर मनुष्य को उपदेश देने चला है! मुझे तेरी बुद्धि पर तरस आता है।

ऊँट की मुखाकृति गंभीर हो उठी। आँखों में तेज़ चमकने लगा। अपने नथुनों को फटकारकर उसने कहा—क्या केवल मनुष्य-देह मिलने से ही मनुष्य अपने को मनुष्य कहने का अधिकारी हो जाता है? क्या नादिरशाह, महमूद ग़ज़नवी और ऐसे-ऐसे अनेक पापी अपने को मनुष्य कहने के अधिकारी हो सकते हैं? और उन्हें मनुष्य देह मिल गई, इस बित्ते पर क्या वे अपने को हम पशुओं से ऊँचा समझ सकते हैं? यदि तुम ऐसा मानते हो, तो तुम्हारी बुद्धि को सौ बार धिक्कार है।

मैं कुछ ठंडा पड़ गया। मैंने कहा—भाई ऊँट, उन पापी मनुष्यों की बात न करो। वे तो नर-राक्षस थे। परंतु मैं तो ऐसा नहीं हूँ। मैं तो अपने लिए कह सकता हूँ कि अपनी समझमें मैं तुमसे कहीं अच्छा हूँ।

ऊँट फिर हँस पड़ा। कहने लगा—अच्छा, ज़रा बता तो दो, कि तुममें मुझसे कौन-सी अच्छी बात है?

मैं सोचने लगा, क्या बताऊँ? आखिर धन के अलावा मुझमें कौन-सी बात है जिसका मैं गर्व कर सकूँ? अत्यन्त साहस करके मैंने दबी जबान से कहा—अच्छा, तो देखो, तुम जानते हो, मैं त्याग से कितना प्रेम करता हूँ, सादगी से रहता हूँ, खादी पहनता हूँ। यह क्या कुछ कम है?

ऊँट ने गर्व के साथ कहा—इसमें गर्व करने की क्या बात है! मुझे देखो, मैं तो कुछ भी नहीं पहनता।

मैंने कहा—और सुनो, मैं भोजन भी सादा करता हूँ, मिर्च-मसाले नहीं खाता।

ऊँट ने कहा—अच्छा त्याग किया! मुझे तो देखो केवल सूखी पत्तियाँ चबाकर ही रह जाता हूँ।

मैंने कहा—मैंने गृहस्थाश्रम का भी त्याग कर दिया है।

ऊँट ने कहा—क्यों इतना अभिमान करते हो? मैंने तो गृहस्थाश्रम में प्रवेश ही नहीं किया। सो, मैं तो बाल-ब्रह्मचारी हूँ।

मैंने कहा—मुझ में ईर्ष्या-द्वेष अधिक नहीं। झूठ बहुत कम बोलता हूँ, सो भी अनजान में। रोष भी कम आता है।

ऊँट ने कहा—इस में कौन-सी बड़ी बात है? मुझ में न ईर्ष्या है, न द्वेष और न क्रोध। झूठ तो जीवन में कभी बोला ही नहीं।

मैंने कहा—मुझ में सेवा-वृत्ति है।

ऊँट ने कहा—उसका नमूना तो हम रोज़ ही देखते हैं। कल एक पीला बछड़ा रो रहा था; क्योंकि उसकी माँ का दूध नित्यप्रति तुम पी लेते हो, बछड़ा तृण-खाकर जीवन-निर्वाह करता है। उस दिन, सुनते हैं, तुमने एक घोड़े को भी दौड़ा कर मार डाला। शहर के तमाम घोड़ों में इसी बात की चर्चा थी। उनकी एक

विराट् सभा हुई थी। उस में मृतक के प्रति सहानुभूति और तुम्हारे प्रति घृणासूचक प्रस्ताव भी पास किये गये थे। न मालूम कितने ऊँटों, घोड़ों और बैलों को तुमने इस प्रकार कष्ट दिया है, कितने पशुओं को लँगड़ा किया है, कितनों को अपनी मोटर के धक्कों से गिराया है! अच्छा सेवा का दम भरते हो! मुझे देखो, न कपड़े पहनता हूँ, न जीभ के स्वाद से नाम मात्र भी संबंध रखता हूँ। केवल सूखे तृण खाता हूँ। फिर भी बेंत, कोड़े और ठोकरें खाता हुआ नम्रता-पूर्वक तुम लोगों की सेवा करता हूँ। इसी को सेवा-व्रत कहते हैं। तुम लोगों से सेवा कैसे संभव है? पहनने के लिए तुम्हें कीमती वस्त्र चाहिए, खाने के लिए सुस्वादु भोजन, सेवा के लिए नौकर, रहने के लिए महल, टहलने के लिए अच्छे वाहन या मोटर। मुसाफिरी करते हो तो मनों सामान और सामग्रियाँ साथ में चलती हैं और तुम्हारे लिए बोझा ढोना पड़ता है हम को। अकाल पड़ता है तो हम लोग भूखों मरते हैं, पीने को पानी नहीं मिलता; परंतु तुम्हारे बगीचों की फुलवारी को सरसब्ज रखने में गाँव-भर के बैलों की शांति नष्ट हो जाती है। तुम्हारा मनुष्य-समाज इस विषय में बड़ा पतित है। शर्म की बात है कि इस पर भी तुम अपने को हम से श्रेष्ठ समझते हो!

ऊँट की बात मेरे हृदय में चुभ गई। मुझे ग्लानि होने लगी। अंतरात्मा कहने लगी—मूर्ख, तू ऊँट से भी गया-बीता है!

पास में खड़े हुए करीर के वृक्ष ने सिर हिला कर कहा—ऊँट सच कहता है।

तब मैंने कहा—प्रभो, मुझे ऊँट जितना आत्म-बल तो दे दो।

सहसा आकाश में बिजली चमकी। मेघ गरजा। सुननेवालों ने सुना, कहनेवालों ने कहा—

मो-सम कौन कुटिल, खल, कामी ?
जेहि तन दियो ताहि बिसरायौ, ऐसो नमक-हरामी।

किसीने कहा—कहनेवाला और सुननेवाला दोनों एक हैं।

किसीने कहा—यह अंतर्नाद है।

मैंने चिल्लाकर कहा—मुझसे सब अच्छे।

कठिन शब्दार्थ

परमार्थ वृत्ति-परोपकारी स्वभाव
कूप मंडूक-संकीर्ण
ब्रह्मांड-सारी दुनियाँ (भूगोल-खगोल के साथ)
दलदल-कीचड़
"लगन लगी पद पावन की-भगवान को प्राप्त करने की धुन लगी थी
नाकों दम करना-परेशान करना
तमीज़-सभ्यता
दृष्टता-ढिठाई
नथुना-नाक का अग्रभाग
बिते पर-सहारे, बल पर
दबी ज़बान से-धीरे से, नम्रता से
दम भरना-किसी गुण का दावा करना
"मो-सम····"-मेरे समान नीच और दुष्ट कौन है ? जिस भगवान ने शरीर दिया, उसी को हमने भुला दिया
लट्ठधारी-लाठी हाथ में लिये हुए

हीरा और कोयला

(लेखक:—श्री रायकृष्णदास)

हीरा—मेरे पास तू कैसे ?

कोयला—क्यों ? तेरा और मेरा तो जनम का साथ है !

हीरा—जनम का साथ है ? चल, हट, दूर हो यहाँ से !

कोयला—झूठ मानता है ? अरे, हम सगे भाई हैं !

हीरा—क्या कहता है ? अभी तक जनम का साथी बनता था, अब भाई बनने लगा। मैं गोरा चिट्टा, तू काला कलूटा। भला कौन कहेगा कि तू मेरा भाई है ?

कोयला—अरे ! मैं तेरा सगा ही नहीं, सगा बड़ा भाई हूँ। एक ही पेट से पहले मेरा जनम होता है, तब तेरा।

हीरा—तभी न हम दोनों एक-से हैं !

कोयला—यह तो ईश्वरी देन है। क्या देव और दानव भाई नहीं ?

हीरा—सोलह आने सच। लेकिन दानव तू ही हुआ, क्योंकि तू मेरा बड़ा बनता है।

कोयला—कौन दानव है और कौन देव, यह तो कर्म से विदित होगा। अपने मुँह से कहने की क्या आवश्यकता है ?

हीरा—अच्छा, रहने दे अपनी पंडिताई ! आ, हम अपनी-अपनी करनी तो देख लें कि तू बड़ा भाई होने योग्य है कि नहीं ?

कोयला—बहुत ठीक, बहुत ठीक, तुझे ही अपनी बड़ाई का बड़ा घमंड है ; तू ही अपने गुन कह चल।

हीरा—पहले तो मेरा रूप ही देख। मैं जहाँ रहता हूँ—सूरज की तरह चमकता हूँ। रंग-बिरंगी किरणें मुझमें से निकला करती हैं। देखनेवालों की आँखें खुल जाती हैं, तबीयत हरी हो जाती है।

कोयला—क्या कहना है! तू तो एक कंकड़-जैसा खान के बाहर आता है; वह तो हीरा-तराश है जो तुझे यह कृत्रिम रूप देता है! तेरा अपना प्रकाश कहाँ? तुझ पर तो जैसी छाया और आभा पड़ी, वैसा ही बन जाता है—'गंगा गये गंगादास, जमुना गये जमुनादास।'

हीरा—पूरी बात तो सुन ले! सुन—मैं राज-राजेश्वरों के सिर पर बैठता हूँ। सुंदरियों का आभूषण बनता हूँ.....

कोयला—हाँ, तू अपने कारण सम्राटों के सिर कटाता है। बड़े-बड़े राज तहस-नहस करा डालता है। तू सुंदरियों की सहज रमणीयता पर भी अपने बनावटीपन से पानी फेरता है—

हीरा—मैं बड़े-बड़े राज-कोषों में कितनी रक्षा से रक्खा जाता हूँ! मेरे लिए पहरा-चौकी लगती है! तेरे जैसा मारा-मारा नहीं फिरता।

कोयला—क्या खूब ! नित्य बंदी बनकर सौ-सौ तालों में बन्द होकर सोने की काँटेदार बेड़ियों में जकड़ा जाकर, तू अपने को बड़ा समझे तो समझ। तेरी बुद्धि को बलिहारी है ! मैं तो स्वतंत्रता-पूर्वक दर-दर घूमना ही जीवन की धन्यता समझता हूँ।

हीरा—तू रहा सदा का जलनेवाला। तू दूसरे का उत्कर्ष कब देख सकता है ?

कोयला—हाँ, मैं जलता हूँ, किंतु दूसरों के लिए—मैं अपने कारण दूसरों को तो नहीं जलाता। मैं जलकर ग़रीबों की भी ज़रूरतें पूरी करता हूँ—लोगों को विभूति देता हूँ।

हीरा—हाँ, इसीलिये न कि वे मुझे खरीदें ?

कोयला—क्योंकि मैं तो तुझे छोटा भाई समझ कर तेरी प्रतिष्ठा ही चाहता हूँ। पर तू तो ठहरा वज्र। तुझे इसका ध्यान कहाँ !

हीरा—रहने दे अपनी उदारता। मैं इन बातों में आकर मार्ग नहीं छोड़ने का।

कोयला—मैं तुझे यही तो चिताना चाहता हूँ, तेरे दिन अब पूरे हो चले,—संसार शीघ्र ही वह दिन देखनेवाला है, जब तेरी पूछ ही न रह जायगी।

हीरा—जब वह समय आवेगा तब देखा जायगा। मैं बीच में ही अपना पद-त्याग क्यों करूँ ?

कोयला—अच्छा मेरे अनुज, मैं जी से तुझे आशीर्वाद देता हूँ—ईश्वर तुझे सुबुद्धि दे।

हीरा—आह! क्या दैव-गति ऐसी ही है कि मैं तेरा अनुज होऊँ? और तू—कोयला—मेरा अग्रज?

कोयला—हाँ, यह एक घटना है जिसे हम मिटा नहीं सकते।

हीरा—तो क्या मनुष्य के पूर्वज बंदर नहीं थे?

कोयला—यह तो तेरे जैसे पारदर्शी ही जाने, मैं अंध-हृदय इन गूढ़ विषयों को क्या समझूँ?

हीरा—चाहे जैसी भी हो, तूने अपने हृदय का कालापन तो स्वीकार किया। तेरी इस हार के आगे मैं अपना सिर झुकाता हूँ।

कोयला—और मैं भी अपने उसी आंतरिक अंधकार से, जो आजीवन का कारण है—तुझे फिर आशीषता हूँ कि ईश्वर तुझे सुबुद्धि दे।

कठिन शब्दार्थ

आँखें खुल जाना-ज्ञान का आना	उत्कर्ष-उन्नति, बड़ाई
तबीयत हरी होना-मन खुश होना	दिन पूरे होना-आयु ख़तम होना
गंगा गये गंगादास, जमुना गये जमुनादास-समय के अनुसार बदलनेवाला	चिताना-सावधान करना
	हीरा-तराश-हीरा काटनेवाला
	तहस-नहस-नष्ट-भ्रष्ट

वैज्ञानिक भारतीय

जगदीश वसु आक्सफोर्ड में ब्रिटिश एसोसियेशन के सामने व्याख्यान दे रहे थे। संसार में सब से बड़े समझे जानेवाले वैज्ञानिक आईन्सटाइन उस सभा में थे। जब वसु बोल चुके, तो आईन्सटाइन ने कहा था कि आचार्य वसु की मूर्ति दुनिया की राजधानी जिनेवा में खड़ी की जानी चाहिए।

प्राचीन भारत ने ज्ञान की खोज में बहुत परिश्रम किया है। पहले-पहल गिनती यहीं बनायी गयी। बीज गणित का आरंभ यहीं हुआ। रेखा गणित यहाँ काम में आया। औषधि और ज़र्राही यहाँ फली फूली। ज्योतिषियों ने यहाँ नक्षत्रों और ग्रहों की गति को समझा। और इन सबके ज्ञान ने हमारे आचार-विचार और रहन-सहन पर असर डाला।

भारत में वैज्ञानिक खोज होना बंद-सा हो गया था। ज्ञान की खोज का नेतृत्व पूर्व के देशों से निकलकर योरप की जातियों के हाथ में चला गया था। संसार के वैज्ञानिकों में भारत का कहीं नाम न आ सका था। उस समय आचार्य जगदीश वसु वह व्यक्ति हुए, जिन्होंने भारत को फिर से नये ज्ञान के खोजनेवालों की पंक्ति में

ला बिठाया। नये ज्ञान को जानने की जो पुरानी रीति थी, उसे फिर चालू किया। देश में वैज्ञानिक खोज के लिए एक नया उत्साह पैदा किया।

जगदीश वसु का जन्म बंगाल के विक्रमपुर में हुआ। उनका बचपन फरीदपुर में बीता। उनके पिता भगवानचन्द्र वसु वहाँ डिप्टी कलेक्टर थे। इन्होंने देशी शिल्प उद्योगों की स्थापना में अपना बहुत-सा धन खर्च किया। जगदीश वसु को प्रारंभ से ही भौतिक शास्त्र के परीक्षणों में बहुत रुचि थी। भारत में अपनी शिक्षा पूरी करके जब वे विलायत जाने लगे तो उनकी माता ने अपने गहने बेचकर उनके लिए धन जुटाया। वे पहले डाक्टरी पढ़ना चाहते थे, पर बीमार रहने के कारण वह न हो सका। उन्होंने विज्ञान में ऊँची शिक्षा प्राप्त की। केंब्रिज और लंदन विश्वविद्यालयों से उपाधियाँ लेकर वे भारत लौटे, और प्रेसीडेन्सी कालेज में भौतिक शास्त्र के अध्यापक नियुक्त हुए। भारतीय होने के कारण उन्हें प्रोफ़ेसर पद के वेतन का दो तिहाई भाग दिया गया। उन्होंने इस नीति का विरोध किया, और तीन वर्ष अपना वेतन नहीं लिया। इन दिनों फ़ोटोग्राफ़ी में इनकी रुचि थी। बिजली चुंबक तरंगों (Magnetic waves) पर भी उनकी खोज जारी रही। कुछ समय बाद उन्होंने अपनी नवीन खोजों के फल प्रकाशित करने आरंभ किये। १९०० में वे अंतर्राष्ट्रीय भौतिक-शास्त्र की कॉंग्रेस में सम्मिलित हुए। वहाँ से लौटकर उन्होंने कई

जटिल यंत्रों का आविष्कार किया। १९२० में वे ब्रिटेन की रायल सोसाइटी के सदस्य चुने गये। १९२५ में ५७ वर्ष की अवस्था में वे कालेज से अलग हुए, और घर पर अपनी छोटी-सी अन्वेषणशाला में काम करते रहे। उनके कार्य का महत्व लोगों को मालूम हो रहा था। अपने धन से, मित्रों तथा जनता और सरकार की सहायता से, उन्होंने एक अनुसंधान-शाला की स्थापना की। आचार्य वसु ने अपने परीक्षणों से प्रमाणित कर दिया है कि सब जीव एक हैं। वनस्पति, धातुएँ सबको दुख दर्द और प्रसन्नता का अनुभव होता है। उसके बनाये यंत्र एक इन्च के दस लाखवें भाग को नाप सकते हैं। और ये सब यंत्र भारतीय कारीगरों की सहायता से बनाये गये थे। आचार्य वसु बंगला भाषा के अच्छे लेखक भी थे। वे नवीन कलाकारों के प्रशंसक थे। भारत सरकार ने 'सर' की उपाधि देकर उनका सम्मान किया था। १९३८ में आचार्य वसु की मृत्यु का समाचार सुनकर माइकेल सेडलर ने कहा था कि वसु महाशय प्राणिशास्त्रियों में कवि थे।

*

भारत वर्ष में वैज्ञानिक परंपरा को फिर से चालू करनेवालों में आचार्य प्रफुल्लचंद्र राय का नाम आता है। उन्होंने आजीवन रसायन शास्त्र में नवीन खोज की और अनेकों उद्योगों को सहायता दी। हिन्दू रसायन का इतिहास नामक अत्यंत खोजपूर्ण और प्रसिद्ध पुस्तक उन्होंने लिखी है।

*

सबसे पहले जिस भारतीय को रायल सोसायटी का फ़ेलो चुने जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, वे थे श्री रामानुजम्। वे स्वयं एक चमत्कार थे। गणित में उनकी प्रतिभा जन्मजात थी। उन्होंने संसार को चकित कर दिया था। इंगलैंड के प्रसिद्ध गणितज्ञ हार्डी ने कहा कि रामानुजम् दस वर्षों में जितना कार्य कर गये हैं, उसके जांचने में संसार के गणितज्ञों को कम से कम ५० वर्ष लगेंगे।

*

विज्ञान के क्षेत्र में सबसे पूज्य स्थान जिनके द्वारा भारत को प्राप्त हुआ, वे हैं आचार्य चंद्रशेखर वेंकटरामन्। वे १९२४ में रायल सोसायटी के फ़ेलो चुने गये। १९२९ में उन्हें 'सर' की उपाधि मिली, और १९३० में संसार प्रसिद्ध नोबल पुरस्कार उन्हें दिया गया। आचार्य रामन्, ऐसे प्रथम वैज्ञानिक हैं जिन्होंने विदेश में शिक्षा प्राप्त नहीं की। उन्होंने अपना मार्ग स्वयं बनाया।

रामन् का जन्म तिरुचनापल्ली में हुआ। रामन् के जन्म के पश्चात् उनके पिता ने बी. ए. पास किया और स्थानीय कालेज में भौतिक विज्ञान के शिक्षक हो गये। फिर वे विशाखपट्टनम् के हिन्दू कालेज में आ गये। वहाँ की प्राकृतिक शोभा और पठन-पाठन के वातावरण के बीच रामन् की शिक्षा आरंभ हुई। उन्होंने बहुत छोटी अवस्था में अंग्रेजी भाषा पर अधिकार कर लिया और फिर विज्ञान के अध्ययन में उन्हें इतना आनंद आने लगा कि दूसरे विषयों का अध्ययन एक तरह से छूट ही गया। किसी प्रकार

१२ वर्ष की अवस्था में उन्होंने मैट्रिक पास कर लिया। दो वर्ष बाद विश्वविद्यालय की प्रथम परीक्षा पास की और प्रेसीडेन्सी कालेज मद्रास चले आये। वहाँ इनकी योग्यता देखकर प्रोफेसर चकित हो गये। उन्हें क्लासों से छुट्टी दे दी। गणित उनका सबसे रोचक विषय था। उन्होंने भौतिक शास्त्र में स्वर्णपदक प्राप्त किया। वे भारतीय अर्थ–विभाग की प्रतियोगिता में बैठे और उसमें सबसे अधिक अंक प्राप्त किये। वे १० वर्ष तक भारतीय अर्थ-विभाग के अफ़सर रहे। विज्ञान में उनकी रुचि निरंतर चली जाती थी। उन्होंने भारत सरकार के बड़े पद अस्वीकार कर दिये, और वैज्ञानिक-भारतीय-एसोसियेशन के संस्थापक डाक्टर "मोहनलाल सरकार" से मिलकर सुबह-शाम उसकी प्रयोगशाला में काम करने लगे। जब रंगून और नागपुर को उनकी बदली हुई, तब वहाँ भी उन्होंने अपने घर पर अपना वैज्ञानिक कार्य जारी रखा। कुछ समय बाद वे फिर कलकत्ता गये। वैज्ञानिक अनुसंधानकर्त्ता के रूप में उनकी प्रसिद्धि होने लगी। १९१७ में उन्होंने सरकारी नौकरी छोड़कर कलकत्ता विश्वविद्यालय में भौतिक शास्त्र के अध्यापक का स्थान स्वीकार कर लिया। इससे बहुत आर्थिक हानि हुई। १५ वर्ष तक अध्यापन और अनुसंधान के कार्य करते रहे। उन्होंने प्रकाश को अपनी खोज का विषय बनाया। और एक नवीन सिद्धांत निकाला कि प्रकाश जब तरलों और पारदर्शी वस्तुओं में छितरता है तो उसके रंग में परिवर्तन हो सकता है। यह बात १९२३ में ज्ञात हुई।

पर यह एक मौलिक सत्य है, इस बात को सिद्ध करने में चार वर्ष लगे। उन्होंने इस कार्य के लिए पारे के दीप (Mercury Light) के प्रकाश का उपयोग किया। और विभिन्न वस्तुओं द्वारा छितराते हुए प्रकाश के पटों में नई रेखाओं की उपस्थिति पायी। ये रेखाएँ प्रारंभिक प्रकाश के पट में नहीं थीं। ये रेखाएँ रामन् रेखा, (Raman's Rays यह प्रकाश पट और प्रकाश का यह व्यवहार रामन प्रयोग) के नामसे प्रसिद्ध है। उनकी इस खोज से अनुसंधान के लिए एक नया क्षेत्र तैयार हो गया है जो कि एक्सरे और रेडियो ऐक्टिविटी के ही समान बड़ा है। आचार्य रामन् आज-कल देश के राष्ट्रीय अनुसंधान के प्रोफेसर हैं और बंगलोर में रामन् अनुसंधान शाला में कार्य कर रहे हैं।

आचार्य रामन् की परंपरा में सब से महत्वपूर्ण स्थान हैं, उनके शिष्य और सहकारी आचार्य कृष्णन् का। आचार्य कृष्णन् रायल सोसायटी के फ़ेलो हैं। उनकी भी सब शिक्षा भारत में ही हुई है। उन्होंने कलकत्ता और इलाहाबाद विश्वविद्यालय में अध्यापन कार्य किया है। आजकल वे राष्ट्रीय-भौतिक-अनुसंधान शाला दिल्ली के डाइरेक्टर हैं। *

देश के प्रमुख भौतिक शास्त्रियों में आचार्य एम्. एन्. साहा और आचार्य भाबा का नाम उल्लेखनीय है। आचार्य साहा आजकल कलकत्ता विश्वविद्यालय में इस शास्त्र के अध्यापक हैं। परमाणु-शक्ति संबंधी खोज से उनका संबंध है। आचार्य भाबा

देश की परमाणु-शक्ति समिति के अध्यक्ष हैं। इस समिति के सदस्य हैं आचार्य कृष्णन् और आचार्य भटनागर।

आचार्य शांतिस्वरूप भटनागर का नाम इस देश में वैज्ञानिक खोज का प्रबंध करने में बहुत महत्व-पूर्ण है। उनके उत्साह और लगन से भारत में वैज्ञानिक और औद्योगिक छान-बीन के लिए एक देश भर में फैली हुई संस्था की स्थापना हुई है। कौंसिल आफ़ साइंटिफिक एण्ड इन्डस्ट्रियल रिसर्च ने उनके नेतृत्व में अनेक राष्ट्रीय अनुसंधान शालाओं की नींव डाली है। कुछ समय में जब ये शालाएँ काम करने लगेंगी तो देश के उद्योग और शिल्प को इनसे बहुत सहायता मिलेगी, ऐसी उम्मीद है।

आजकल मनुष्य अपने जीवन में विज्ञान का बहुत उपयोग कर रहा है। जिस देश में विज्ञान की खोज करनेवाले जितने अधिक और योग्य हैं, वह देश उतनी ही उन्नति करता है। हमारा देश बहुत बड़ा है। यहाँ ग़रीबी और कंगाली भी बहुत है। यह उद्योग धन्धों के द्वारा ही दूर हो सकती है। उनके लिए बहुत से वैज्ञानिक चाहिए, जो देश की दरिद्रता दूर करें, और विदेशों में अपना तथा देश का यश फैलायें। देश के विद्यार्थियों में से ही ऐसे वैज्ञानिक, उत्पन्न होंगे। इसलिए हमें अत्यंत लगन और उत्साह से काम करना चाहिए। छात्रों को चाहिए कि वे मन लगाकर विज्ञान पढ़े।

—संकलित

रूस में बच्चों का जीवन

रूस में बच्चों की शिक्षा पर बहुत ध्यान दिया जाता है। जो अध्यापक केवल लिखा-पढ़ा होता है उसका वहाँ अधिक सम्मान नहीं होता। आदरणीय शिक्षक वही समझा जाता है जो विद्या के साथ चरित्रगठन का भी उपदेश देता है और बालकों को बुद्धिमान, संयमी तथा सच्चरित्र बनाता है। रूस के बड़े अधिकारियों की यह राय है कि शरीर दुर्बल होने पर दिमाग़ भी बलवान नहीं हो सकता, इसलिए वे व्यायाम करने पर ज़ोर देते हैं। ऐसे अनेक अस्पताल हैं जहाँ डाक्टर बिना फ़ीस लिये, बालकों की जाँच करते हैं। वे बच्चों के दाँत देखते हैं और स्वास्थ्य के नियम बताते हैं। स्वास्थ्य के नियमों का प्रचार भी खूब किया जाता है।

बच्चे जाड़े के दिनों में भी कम से कम एक खिड़की खोलकर सोते हैं जिससे साफ़ हवा आती व जाती रहे; दाँतों को रोज़ साफ़ करते हैं, अपना अपना तौलिया अलग रखते हैं और अकसर कपड़े बदलते हैं। जब डाक्टर बुलाता है तब बच्चे अपने माता-पिता से ज़रूर स्कूल आने को कहते हैं जिससे डाक्टर जो कुछ बताये उसपर अमल किया जाय। एक चौथी कक्षा के बालक ने डाक्टर से एक बार पूछा कि मेरे पिता बहुत सिगरेट पीते हैं।

एक या दो विषयों में पास नहीं होता उसे, दूसरा साल आरंभ होने पर, फिर परीक्षा में बैठने दिया जाता है।

इंगलैंड में माँ-बाप स्कूल में केवल प्रधानाध्यापक से भेंट करने जा सकते हैं। सोवियट रूस में माता-पिता को स्कूल से संपर्क रखना पड़ता है। प्रति वर्ष एक कमेटी बनायी जाती है जिसके मेंबर बच्चों के माता-पिता होते हैं। यह कमेटी बालकों के खेल-कूद अथवा मनोविनोद में दिलचस्पी लेती है।

माँ-बाप अध्यापकों की त्रुटियों को देखते हैं। उनपर विचार करते हैं। यदि कोई अध्यापक बच्चों के प्रति उदासीन होता है तो वे प्रधानाध्यापक को इसकी खबर देते हैं। प्रत्येक बालक के पास एक डायरी होती है जिसमें घर के लिए दिया हुआ उसका सब काम लिखा जाता है। प्रति सप्ताह क्लास का सलाहकार एक छोटी-सी रिपोर्ट बनाता है जिस पर माँ-बाप भी हस्ताक्षर करते हैं। इस बात को आवश्यक समझा जाता है कि हर एक माँ-बाप अपने बालक के काम को अच्छी तरह जान जाय। बहुधा ऐसा होता है कि बालकों के पिता अथवा माताएँ क्लास में जा बैठती हैं और देखती हैं कि पढ़ाई किस तरह होती है। पढ़ाई के समय माताएँ पीछे की बेंच पर चुपचाप बैठ जाती हैं और देखती हैं कि अध्यापक किस तरह पढ़ाते हैं। यदि पढ़ाने में कुछ त्रुटियाँ होती हैं तो वे उन पर उसके साथ बहस करती हैं। अध्यापक बालकों के घर जाते हैं।

एक बालक जिमी था। वह पढ़ने में मन नहीं लगाता था। एक बार उसका मास्टर उसके घर गये और पूछा कि उसका दैनिक कार्य कैसा है। मालूम हुआ कि वह स्कूल से रोज़ देर में आता है।

अध्यापक ने पूछा—जिमी, क्या तुम्हारी माता कहना ठीक है?

जिमी—जी हाँ, ठीक है।

अध्यापक—क्या तुम्हें पढ़ना-लिखना अच्छा नहीं लगता?

"बहुत नहीं" जिमी ने अपनी पुस्तकें दिखाईं। कहा कि मुझे स्केटिंग और गर्मी में मछलियाँ पकड़ना बहुत पसंद है।

अध्यापक ने उसका टाइमटेबिल बनाया और उसे बताया कि स्कूल का काम इस तरह करना चाहिए। बालक ने आज्ञा मानने का वादा किया और माता ने भी कहा कि मैं उसकी पूरी रिपोर्ट भेजा करूँगी। चलते समय शिक्षक ने माता पिता से कहा कि इसके लिए अच्छी सचित्र पुस्तकें ख़रीद दो जिससे पढ़ने में इसकी रुचि बढ़े।

इस बात को न भूलना कि तुम्हारा सबसे मुख्य कर्तव्य जिमी को ठीक करना है।

माँ ने कहा—ऐसा ही होगा; परंतु आप भी फिर आइयेगा। आपके आने से हमें अपना काम करने में बड़ी सहायता मिलेगी।

बच्चों को मारने पीटने की आज्ञा माता-पिता को नहीं है। एक और बालक था जिसका बाप बड़ा क्रोधी था। ज़रा-सी बात में नाराज़ हो जाना उसका स्वभाव था। एक दिन लड़का बहुत शोर कर रहा था। बाप ने मना किया, परंतु उसने न माना। तब उसने एक तमाचा लगा दिया। लड़का स्कूल गया। वहाँ उसने साथियों से कहा कि मैं अपने बाप की शिकायत करने थाने में जा रहा हूँ।

पुलिस अफ़सर तहकीकात करने आये। बाप ने कहा—मेरी आदत मारने की नहीं है, परंतु यह लड़का बहुत नटखट है। बात नहीं मानता। मुझे सिर दर्द था, पर यह शोर मचाता था। मैंने इसे मना किया। यह मानता न था। इसलिए मैंने पीटा है।

पुलिसवाले ने कहा—अब आगे से ऐसा न कीजिये। यह कहकर वह चला गया।

(रूस और उसकी शिक्षा प्रणाली से)

कठिण शब्दार्थ

सेनेटोरियम्-क्षय रोग चिकित्सालय बहस-चर्चा

तनिक-थोड़ा तहकीकात-Investigation

मौत के मुँह में

(लेखक—श्री राम शर्मा B.A.,)

हम दोनों निर्जन स्थान में चोरों की भाँति छिपे—घात लगाये—बाघ की जान के प्यासे बैठे थे, और बेचारा बकरा नीचे की ओर बीस पचीस गज़ की दूरी पर चिल्ला-चिल्लाकर आकाश-पाताल एक कर रहा था। उसे अपनी जान के लाले पड़े थे। बेचारे को इतनी समझ कहाँ कि उसका चिल्लाना बाघ का आह्वान करना था।

पूर्णिमा थी, इसलिए प्राची दिशा से, रात्रि होते ही रात्रिदेव अपनी पूर्ण कांति से बड़ी सजधज से निकले। हमें इस समय चन्द्रमा की चंद्रिका से प्रेम न था। हम तो "कागचेष्टा बकध्यानं" से बाघ की टोह में थे। बकरे की में-में और में-में अनंत रूप से जारी थी। हम लोग भी अपने स्थान से जहाँ हमें कोई देख न सकता था बाघ के आगमन की प्रतीक्षा में थे। सात, आठ, नौ बज गये। बाघ को आना होता तो सायंकाल को ही आ जाता। ऐसे जंगल में जहाँ पर सायंकाल को कोई आदमी रहने का साहस न कर सकता था, यदि बाघ होता तो बकरे की बोली पर गोली की भाँति आता। यों तो सायंकाल होते ही जंगल में निशाचर जंतुओं सूअर आदि की गति से चहल-पहल थी,

पर इस चहल-पहल से हमें क्या मतलब ! प्रतीक्षा करते-करते दस बजने आये और लक्ष्मीदत्तजी को सिगरेट पीने की इच्छा हुई, पर मैंने संकेत से उन्हें ऐसा न करने दिया, क्योंकि बाघ को चौकन्ना करने और भागने के लिए तनिक सा संदेह ही पर्याप्त होता है। बाघ का मारना क्या है, उसको ठगना है ? जो वीरता और होश-हवास रखते हुए उसे धोखा दे सकेगा वही उसे मार सकेगा। रही मरने जीने की बात, सो तो बाघ के शिकार में अपना शिकार कभी भी कैसे भी हो सकता है।

साढ़े ग्यारह बजे के लगभग हमसे चार-पाँच फ़र्लांग दूर काकड़ (Barking deer) बोला। काकड़ दिन हो या रात—भयभीत होकर बाघ को देखकर बोलता है। कदाचित् बाघ हो, इसलिए हम अपनी बंदूकें शांति से हाथ में लेकर बैठ गये। योग-वृत्ति से आखें फाड़-फाड़ कर देख रहे थे। एक बज गया, पर बाघ न आया। इससे हम हतोत्साह न हुए, पुराने पापी थे। बाघ के स्वभाव से भली भाँति परिचित थे। हम जानते थे कि अपने भोजन बकरे पर बाघ जल्दी भी आ सकता है और सोच-समझकर घंटों में—देर से भी। आतुरता से काम नहीं चलता। इतने में हमसे पचास गज़ की दूरी पर एक पत्थर लुढ़का। और कोई आहट हुई। अब हमें विश्वास हुआ कि हो न हो, बाघ ही है। दूर से ही बैठकर उसने बकरे को देखा है और बहुत देर तक इसी आशंका में था कि कहीं छली प्रपंची मनुष्य न

हो—यह विश्वास करके कि कोई भय नहीं है, बाघ आगे बढ़ता प्रतीत होता है। बकरा बाघ को देखकर मिमियाना बंदकर देता है और सिकुड़ कर पूँछ हिलाता हुआ कातर दृष्टि से देखने लगता है। सम्मुख मौत को नंगा नाचता देख बकरा विवश हो, गुम सुम हो जाता और उसके सामने सिर टेक देता है। अभी बाघ खुले मैदान में न आया था—कम-से-कम हम लोगों ने तो उसे न देखा था, पर बकरे की दृष्टि उस पर पड़ गयी थी। थोड़ी देर उपरांत जंगल के किनारे से दो चमकती हुई गोलियाँ सी दिखाई दीं। वह चौंधियानेवाली भयावह ज्योति बाघ की आंखों की थी। अजगर और बाघ की आंखों में मोहक शक्ति होती है। वह शक्ति बकरे के और हमारे सामने थी। मैंने धीरे से लक्ष्मीदत्त जी की टाँग को अपने हाथ से दबाया। उत्तर स्वरूप उन्होंने भी वही संकेत किया। शिकार के समय बोलना और हिलना-डुलना मूर्खता है। शिकार के संकेत होते हैं। उन्हीं संकेतों—वाणी के संकेत नहीं, वरन् हाथ दबाने के संकेतों—से हम तैयार हो गये। बाघ ने जब देखा कि जंगल से एक छलाँग में वह बकरे तक नहीं पहुँच सकता, तब वह धीरे धीरे बिल्ली की भाँति घात लगाये हुए आगे बढ़ा, और अपने स्नायु और पुट्ठों को इकट्ठा करके वज्र की भाँति बठा। यह आसन घातक था और बकरे के जीवन के कुछ ही क्षण बाकी थे, ऐसा प्रतीत होता था; पर नहीं। "धांय" की प्रलयकारी ध्वनि हुई और लक्ष्मीदत्त जी ने दुनाली बंदूक से

एक दम दोनों नालें छोड़ दीं। बंदूक के दहलानेवाले शब्द का उत्तर हृदय काँपनेवाले बाघ के गर्जन से दिया गया। बाघ को गोली तो लगी थी, पर मर्म स्थान पर नहीं। पेट में लगी थी। चोट खाकर बाघ गरजकर गिर पड़ा और छटपटाने लगा। पर छटपटाना और गरजना इतनी देर तक न था कि दूसरा फायर किया जा सके। मैं अपनी राइफल लिए बैठा था। मैं चाहता तो एक गोली बाघ के खोपड़े पर मार सकता था, जिससे बाघ टस-से-मस न हो, पर उस दिन का सेहरा तो लक्ष्मीदत्त जी के सिर पर था। बाघ विद्युत-गति से लपककर अंदाज़ से हम लोगों की ओर बढ़ा। हमारे होश उड़ गये और समझ लिया कि बस हिंसा के पापों का प्रायश्चित्त—सर्वं वै पूर्ण स्वाहा—हो गया। स्मरण रहे—जैसा कि शिकार की घटनाएँ क्षण में होती हैं और उनके वर्णन में अधिक समय लगता है और अनावश्यक स्थान घिरता है। हाँफते हुए बाघ को ऊपर तेज़ी से चढ़ते हुए देखकर मैं ने रायफ़ल दाग़ दी, पर निशाना चूक गया। रात्रि के समय रायफ़ल का निशाना; कारतूस निकाला; फेंका; और दूसरा कारतूस नाले में डाला।

इतने में लक्ष्मीदत्त जी अपनी बंदूक के ख़ाली कारतूस निकालकर नये कारतूस लगा ही पाये थे कि बाघ ने आकर अगले पंजे की थाप हमारी आड़ पर मारी। सब झाड़-लकड़ी, हमारी सब क़िलेबंदी टूट गयी। हम बाघ के सम्मुख बैठे थे। मैं ने एक

फ़ायर और किया, और वह जल्दी में उसकी छाती में लगने के बजाय, उसकी मेरी ओरवाली अगली टाँग में तिरछा लगा। फल-स्वरूप उसकी वह टाँग बिलकुल बेकार हो गयी, पर उसने दूसरे पंजे से वज्र-प्रहार किया। उस समय का स्मरण करके मेरा कलेजा अब भी दहल जाता है। लेखनी उस मनोवृत्ति को व्यक्त नहीं कर सकती। उस अभागे क्रूर प्रहार से लक्ष्मीदत्त जी लोट-पोट होकर नीचे की ओर निर्जीव बन पत्थर की भाँति लुढ़कने लगे। प्रहार के समय लक्ष्मीदत्तजी ने केवल यही शब्द निकाले—"मास्टरजी, बुरी तरह मरा।" उनकी बंदूक मेरी ओर आ गिरी। मेरा सिर चक्कर खा गया। आँखों के सामने अंधेरा छा गया। बाघ के भय से नहीं, अपनी मौत की आशंका से भी नहीं, वरन् अपनी वृद्धा माता के एक मात्र सहारे लक्ष्मीदत्तजी के लिए। हाय! उनकी पत्नी, उनकी.....का समाचार सुनकर कैसे सिर धुनेगी। लक्ष्मीदत्तजी के घर में तीन प्राणी थे। उनकी अट्ठाईस तीस वर्ष की स्त्री, पाँच छः महीने की बालिका और उनकी पैंसठ वर्षीय माता, जो लक्ष्मीदत्तजी के केवल दो वर्ष की आयु में ही विधवा हो गयी थीं। ऐसे कुटुम्ब पर यह विपत्ति—यह वज्राघात और उसका समाचार देनेवाला मैं! यह मुझसे कैसे हो सकेगा? किस मुँह से मैं नगर को लौटूँगा? मैंने यह शर्त क्यों की थी कि आज पहले फ़ायर लक्ष्मीदत्तजी को

करना पड़ेगा ? नैतिक दायित्व तो मुझपर था। होने को तो वही होता है, जो भगवान की इच्छा होती है, पर मुझको उसका साधन क्यों बनाया ?

पाठक गण मेरी इस स्थिति का विचार कर लें। पता नहीं बाघ लक्ष्मीदत्त जी को कहाँ खींच ले गया और उनके शरीर की क्या दुर्गति की होगी। ये विचार आते ही मैं पागल सा हो जाता था। अंधाधुन्ध फ़ायर करना निरर्थक था। कहीं लक्ष्मीदत्त जी में जीवन शेष हो, तो मेरी बिना निशाना की गोली के वे शिकार न बन जायँ। यदि उन्हें ढूँढ़ा भी जाय तो कहाँ ? और प्रातःकाल तक प्रतीक्षा भी कैसे की जाय ? अच्छा हो मेरी जीवन लीला भी समाप्त हो जाय। एक वृद्धा असहाय स्त्री का श्राप और चीत्कार तो न सुनूँगा एक युवा पत्नी का हृदय चीरनेवाला विलाप तो कानों में न पड़ेगा। इस उद्विग्नता में रायफ़ल वहीं पटक दी और दुनाली बंदूक जिसे लक्ष्मीदत्त जी ने भरा था, उठाकर बाघ और लक्ष्मीदत्त जी के लुढ़कने की ओर उतरा। बंदूक की नाल खोलकर देखा, तो दोनों नालों में ग्राफ़ भरे हुए थे। कारतूसों को नालों में फिर रखकर मैं नीचे की ओर चला। पन्द्रह बीस गज़ की उतराई उतरकर बकरे वाले मैदान में आना ही चाहता था कि कोई लँबी-सी चीज़ पड़ी हुई जान पड़ी। ख्याल हुआ, लक्ष्मीदत्तजी का शव होगा, पर नहीं। वह तो बाघ है।

मैंने समझा—राक्षस बाघ लक्ष्मीदत्तजी का काम तमाम करके तब मरा है। मैं ऐसा सोच ही रहा था कि बाघ एक दम तड़पा और यदि मैं बंदूक की नाली उसके मुँह में डालकर और दोनों नालों से फ़ायरकर उसका मस्तिष्क न उड़ा देता तो वह मेरी गर्दन को एक ही चोट में तोड़ देता। बाघ तो मर गया पर मुझे तो लक्ष्मीदत्तजी की खोज थी। बकरे पर इतना क्रोध आ रहा था कि उसको भी समाप्त कर दूँ। किस मुहूर्त में उसको लिया, जो ऐसी घटना हुई। खुली जगह के चारों ओर ढूँढ़ा, पर लक्ष्मीदत्तजी न मिले। हारकर उत्साह हीन होकर फिर ऊपर—बैठने की जगह—को चढ़ा और वहाँ से फ़िर अंदाज़ लगाकर नीचे उतरा। कुछ ही दूर पर लक्ष्मीदत्तजी को पड़ा पाया। देखकर पहले तो माथा ठनका, हृदय की गति बढ़ गयी। चित्त कहता था कहीं जीवित ही न हों। मनुष्य संदिग्धावस्था में भंवर में पड़ी हुई लकड़ी के समान होता है जो कभी उछलती है और कभी डूबती।

साहस करके मैं उनके सिर के पास बैठ गया और हाथ उठाकर नाड़ी देखी, हैं यह क्या! नाड़ी तो चल रही थी। गति बहुत मंद थी। मैंने आव गिना न ताव। जेब में से ब्रांडी की शीशी निकालकर लक्ष्मीदत्त जी का मुँह खोलकर गले में आधी छटाँक के लगभग ब्रांडी उतार दी। मैं न तो मदिरा का पियक्कड़ हूँ और न कभी उसे पीता ही हूँ। पर शिकार में

कुछ औषधियाँ साथ रखता हूँ और उनमें से एक ब्रांडी भी है, ब्रांडी के पेट में जाते ही लक्ष्मीदत्तजी ने झट से आँखें खोल दी और कराहने लगे। मैंने कहा—तुम से अधिक बुरी हालत मेरी रह चुकी है। घायल नहीं हुआ पर मानसिक घायल रह चुका हूँ। कराहो मत। दियासलाई दो। आग जलाऊँ। जाड़े के मारे हड्डियाँ तक गली जाती हैं। तुम्हारा घाव फिर देखूँगा। बाघ पास ही मरा पड़ा है।

लक्ष्मी—ऐं मरा पड़ा है!

मैं—हाँ, मरा ही पड़ा है! अंत में उसे मेरी भी गोली खानी पड़ी।

*

आग जलायी और लक्ष्मदत्त जी को वहाँ पर बड़ी कठिनाई से सहारा लगाकर लाया और उनकी चोट की देख-रेख की। बातें करते-करते और पट्टी बाँधते-बाँधते प्रातःकाल हो गया।

कठिन शब्दार्थ

चौकन्ना-सचेत करना हतोत्साह-Disheartened

विद्यार्थी और लोक-सेवा

(श्रीकृष्णदत्त पालीवाल, एम्. ए.)

प्रत्येक विद्यार्थी अपने सर्वोच्च आदर्श या आदर्श-कल्पना के लिए उस समाज का ऋणी है जिसका कि वह सदस्य है। प्रत्येक विद्यार्थी को सदैव यह स्मरण रखना चाहिए कि वह जो शिक्षा पा रहा है उसके लिए पूर्णतया समाज का ऋणी है और वह इस भारी ऋण से उस समय तक उऋण नहीं हो सकता जब तक कि अनवरत लोक-सेवा द्वारा वह उस ऋण को न चुका दे। हमारे विश्व-विद्यालय वास्तव में सेवा-मंदिर होने चाहिये जिनमें रहने से विद्यार्थियों के हृदयों में आजीवन समाज-सेवा करने के पवित्र भाव अमिट हो जायँ! शिक्षा का मुख्य उद्देश्य भी यही है कि वह मनुष्य की सर्वोच्च शक्तियों को विकसित करे और समाज-सेवा से अधिक ऊँची और पवित्र बात दूसरी हो ही नहीं सकती। विश्व-विद्यालयों में स्वाध्याय तथा समाज-सेवा के केंद्र होने चाहियें जिनके द्वारा विद्यार्थी सामाजिक विषयों का चिंतन, मनन और अध्ययन कर सकें, सेवा-कार्य की व्यवहारिक शिक्षा पा सकें और अपनी समाज-सेवा की सुभावनाओं को सदा के लिए स्थायी बना सकें।

इंलैंड और अमेरिका के विश्वविद्यालय बाकायदा समाज-सेवाकार्य की शिक्षा देते हैं, लोकोपयोगी समस्याओं का वैज्ञानिक अध्ययन करते हैं, अपने विद्यार्थियों में इस अध्ययन की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन देते हैं, उनके अध्ययन-मंडल स्थापित करते हैं, तथा समाज-सेवा-केन्द्रों में उन्हें संगठित करके उनसे समाज-सेवा का कार्य लेकर उन्हें उस कार्य की व्यावहारिक शिक्षा देते हैं। हमारे यहाँ भी कुछ विश्वविद्यालयों में अध्ययन और सेवा-कार्य का श्रीगणेश होने लगा है परंतु अभी उसका विस्तार और क्रिया-शीलता बहुत ही परिमित है। इस बात की परम आवश्यकता है कि विश्वविद्यालयों की प्रयोग-शालाएँ सामाजिक समस्याओं के हल करने के काम में आवें, उनके प्रोफ़ेसर और विद्यार्थी विशेष समस्याओं के विशेषज्ञ बनकर आवश्यक ज्ञान का प्रकाश फैलावें, और सर्वत्र अध्ययन-मंडलों और समाज-सेवा-केन्द्रों की स्थापना करके अपने परम पवित्र परंतु अब तक उपेक्षित कर्तव्य का पालन करें।

सबसे पहला काम जो विद्यार्थी सहज ही कर सकते हैं और जो उन्हें अवश्य ही करना चाहिए वह यह है कि वे स्वस्थ लोक-मत बनाना और स्वयं श्रेष्ठ तथा स्वस्थ सम्मति रखना अपना प्रथम सामाजिक कर्तव्य समझें। यानी स्वास्थ्य, सफाई, अनुशासन, सेवा आदि सभी सामाजिक प्रश्नों पर अपना उचित तथा गंभीर मत रक्खें

और लोगों को भी वैसा मत रखने के लिए प्रेरित करके उपयोगी तथा लाभप्रद नियमों को मनवावें।

प्रत्येक विद्यार्थी का दूसरा सामाजिक कर्तव्य यह है कि उसके आस-पास की विविध देशकालावस्था में जो कुछ उसके अपने जीवन का पोषक और सहायक हो उसी पर ज़ोर दे, न कि उस पर और उल्टा बाधक हो। कोई विद्यार्थी इतना अंधा नहीं होगा कि वह यह समझ बैठे कि समस्त सत्य और विकास उसकी मौरूसी है। और इसी प्रकार यह भी सच है कि कोई भी विद्यार्थी इस बात में संदेह नहीं कर सकता कि दूसरों में भी कुछ अच्छापन है। उसे यह स्वीकार करना पड़ेगा कि दूसरों में भी कुछ-न-कुछ अच्छापन अवश्य है। इसके विपरीत बात पर ज़ोर नहीं देना चाहिये। किसी भी छात्र-समुदाय का यह विशेषगुण होना चाहिए कि वह अपने अपूर्ण जीवन को संपूर्ण बनाने में अत्यंत उत्सुकता प्रकट करे। हमें दूसरे पक्ष की अच्छाई देखने की ओर ही ध्यान देना चाहिये, बुराई तो सभी देख सकते हैं। अपने सहकारियों का ध्यान करते समय या उनके विषय में बात-चीत करते समय, उनके सद्गुणों को ढूँढो, अवगुणों को नहीं। प्रशंसा का आश्रय लो, घृणा का नहीं। प्रत्येक मनुष्य में प्रेम करने योग्य गुणों को ढूँढो और बुराई की ओर ध्यान देने की अपेक्षा उनके गुणों की ओर ध्यान लगाओ। कालेज-जीवन के चार वर्षों को व्यतीत करने का एक ढंग अपने समुदाय विशेष की सीमा के भीतर बंद रहना है। परंतु

ऐसे विद्यार्थी उस महान शिक्षा से वंचित रह जाते हैं जो विवरण पत्रिका में निर्दिष्ट कक्षा की शिक्षा से अधिक लाभदायक है।

विद्यार्थियों का तीसरा सामाजिक कर्तव्य जिनके साथ वे रहते हैं उनके हिताहित का ध्यान रखना है। प्रत्येक कालेज और छात्रावास के चारों ओर मधुरता और प्रकाश का साम्राज्य होना चाहिये। यदि किसी कालेज और छात्रावास में यह बात नहीं है तो अपने शिष्ट, नम्र और आनंददायक व्यवहार से उसे ऐसा बना दो।

इनके अतिरिक्त विद्यार्थी स्वयं सामाजिक समस्याओं की खोज, अनुसंधान और उनके अध्ययन का शुभ कार्य कर सकते हैं। विद्यार्थियों को सर्वत्र इस प्रकार के अध्ययन-मंडल स्थापित करने चाहियें। सेवा केन्द्रों में संघटित होकर समाज-सेवा के शुभ-कार्य करना, विद्यार्थियों के लिए अत्यन्त हितकर तथा आवश्यक है। अपनी वाद-विवाद-समस्याओं और अध्ययन-मंडलों में सामाजिक समस्याओं पर व्याख्यान दिलवाओ, निबंध लिखवाओ, गाने कराओ और सर्वोतम व्याख्यानदाता, निबंध-लेखक तथा कवि और गायक को पदक दो।

साहित्य द्वारा सेवा का कार्य भी विद्यार्थी सुगमतापूर्वक कर सकते हैं। ऐसे अनेक विद्यार्थी मिलेंगे जो थोड़े-से प्रोत्साहन से अंग्रेजी से देशी भाषाओं के अनुवाद करने का कार्य कर सकें।

यदि हमारे कालेज प्रतिवर्ष कुछ ऐसे विद्यार्थी तैयार कर सकें जिनमें अनुवाद करने की योग्यता हो तो देश को बहुत लाभ पहुँचे।

सामाजिक कुप्रथाओं के विरुद्ध तथा नवीन ज्ञान के पक्ष में लोकमत बनाने, निरक्षरता दूर करने, गर्मी की छुट्टियों में समाज-सेवा के विविध कार्य करने में विद्यार्थी गरमी वगैरह की बड़ी-बड़ी छुट्टियों में जब गाँव में जावें तब गाँव-भर के सब विद्यार्थियों को स्वाध्याय और सेवा-कार्य के लिए संघटित कर सकते हैं, फिर चाहे वे विद्यार्थी भिन्न-भिन्न कालेजों में ही क्यों न पढ़ते हों।

वे पथ्य-तथा उचित आहार-विहार-संबंधी समस्याओं का अध्ययन कर सकते हैं, वीरोचित कार्य-कारिणी सभा, अनाथों और भूले-भटके हुओं की सभा स्थापित कर सकते हैं। रात्रि पाठशालाएँ तथा वयस्कों के लिए दैनिक पाठशालाएँ संघटित कर सकते हैं। संक्षेप में, वे अपने छुट्टी के दिनों को सरलतापूर्वक गाँव और समाज की सेवा के अनेक पुनीत कार्य करके बिता सकते हैं। यदि विद्यार्थी इस ओर अपने कर्तव्य का पालन करने लगें तो देश और समाज का परम उपकार हो सकता है।

हिमालय की झलक

लेखक:—श्री सियारामशरण गुप्त

लखनऊ से रात को साढ़े दस बजे गाड़ी छूटती थी। कुछ पहले ही स्टेशन पहुँच गया। इरादा था कि कुछ अच्छी-सी जगह पा सकूँ। मित्र ने इन्टर क्लास में बैठने का आग्रह किया था। यह दरज़ा कुलीन गरीबों का दरज़ा है। हम जैसे अनेक दूसरे जन भी दरज़ा बढ़ाने की धुन में रहते हैं। इसलिए भीड़ की आशंका थी। तांगे से उतरते ही कुली ने बताया कि इन्टर में बैठियेगा तो आगे एक जगह गाड़ी बदलनी होगी। तीसरे दर्जे का एक डिब्बा सीधा काठ गोदाम तक जाता है। रेलवालों को मुझे धन्यवाद देना पड़ा। किसी उद्देश्य से क्यों न यह प्रबंध किया गया हो, उन्होंने मेरे कुछ पैसे बचा दिये। तीसरे दरजे में ही बैठने का निश्चय मुझे करना पड़ा। योग्यता की पहली परीक्षा में एक अपरिचित सज्जन की कृपा से निश्चितता मिल गई। टिकट की खिड़की पर वहाँ किसी कंगालों की-सी भीड़ को टिकट-दान किया जा रहा था। वहाँ से मेरे लिये टिकट लाकर उन्होंने मुझे घायल हो जाने से बचा लिया। हमारा डिब्बा गाड़ी के अंत में था। लोग अग्रगामी होना पसंद करते हैं। इसलिये अधिक भीड़ से अनायास ही हम लोग बच गये। किसी तरह बिस्तर लगाने योग्य जगह वहाँ मिल

गई। जब मिल गई, तब वह अपनी ही अपनी है। सबके सब हमारे देशवासी इतने भले हैं कि किसी को उसके चाहे जैसा अधिकार हो, वंचित करने का पाप वे नहीं लेते।

आकाश बादलों से घिरा था। रात अंधेरी। पता नहीं चलता था, कहाँ आकर गाड़ी रुकी और फिर कहाँ के लिये रवाना हो गई है। अज्ञात और अदृश्य की ओर बढ़े जा रहे थे। फिर भी निश्चितता थी। सो सकते थे, पर सो नहीं सके। पानी बरस जाने से लैंप के आस-पास और पूरे डिब्बे में पतंगों की भरमार थी। इन, बिना टिकटों की संख्या का प्रश्न ही क्या? अपने प्रदीप्त प्रेमी के निकट आकर आत्म समर्पण करने का अधिकार उनका था। खेद और दुख इतना ही था कि हम सभी यात्रियों को उन्होंने लैंप का ही भाई-बंधु समझ रखा था। ढेर के ढेर आ आकर ऊपर गिरते थे, हम लोग किसी तरह उन्हें विश्वास न दिला सके कि हमारे भीतर या बाहर कहीं एक कण चिनगारी नहीं, तुम धोखा खा रहे हो।

पीलीभीत के आस-पास कहीं सबेरा हुआ। इस नाम के साथ किसी अभूत स्वर्णाभा की कल्पना भी। वह पूरी नहीं हुई। मैदान अधिक दिखाई पड़ा, पेड़-पौधे कम! एक जगह सड़क पर देखा कि एक आदमी दुबले-पतले और हड्डी निकले टट्टू पर सवार है। उसके पीछे कुछ अंतर पर अपने महावत को लिये एक हाथी

सूँड़ हिलाता हुआ अपनी सहज चाल से चला आता है। बड़ी देर तक यह घटना भुलाये नहीं भुली।

उत्सुकता बढ़ती गई कि कहाँ पहले पहल गिरि के दर्शन होते हैं। सहयात्रियों को यह कुछ अजीब बात जान पड़ी। यह पेड़ कौन-सा है? वह सड़क कहाँ को जाती है, पहले-पहल हिमालय के शैल-शिखर कहाँ से दीखते हैं? ये बातें उनके लिये महत्व की न थीं। इन प्रश्नों के साथ ही उन्होंने एक विख्यात नगर की चर्चा छेड़ दी।

एक नदी के निकट हो कर रेल गाड़ी आगे बढ़ने लगी। नदी थी या नाला, कोई नहीं बता सका। हिमालय का नाला भी क्या हमारे यहाँ के नालों जैसा दुबला पतला होगा? काले रंग की मोटी रेल का लंबा-चौड़ा पाट और उसके बीच में धूप से चम चमाती हुई एक पतली रजत जल धारा। मानों बहुत अधिक मार्जिन देकर छापी हुई कोई हृदय हारिणी कविता हो। नाम उसका मालूम नहीं हो सका, उसकी कल-मुखर ध्वनि कर्णों तक यहीं पहुँच सकी; फिर भी वह बिना परिचय के हृदय के एक कोने में अंकित हो गई।

गाड़ी काठगोदाम आकर रुकी। यहीं नैनीताल के लिये मोटर लारी मिलेगी।

लारी स्टार्ट हो कर चल पड़ी। जगह आगे की ओर ही मिल गई थी। गाड़ी की छत नीची थी। आस-पास का दृश्य

पूरा दिखाई न देता था। जब हम इस अतुल आकाश में डुबकी लेने जा रहे हैं, तब छत की यह बड़ी-सी पट्टी आखों को बहुत क्लेशकर प्रतीत होती थी।

पक्की सड़क चक्कर खाती हुई ऊपर गई है। इधर-उधर चोटियाँ ही चोटियाँ, वृक्ष ही वृक्ष हैं। हिमालय के वृक्ष बौने कम होते हैं। अपनी भूमि की ऊँचाई के प्रसाद से वे वंचित नहीं हैं। जैसे-जैसे ऊँचाई पर चढ़ते गये, दृश्य की सुन्दरता बढ़ने लगी। अब तक भूमि पर ही यात्रा करने का अवसर पाया था। आज हमारी गाड़ी मानों आकाश पर चढ़ रही हो!

आगे या ऊपर की ओर बढ़ते चले गये। कहीं बहुत निचाई पर कुछ घरों की बस्तियाँ दिखाई दीं। आदमी बहुत कम देखने में आये। खेत एकदम विचित्र थे। हाथ-डेढ़ हाथ लंबी,—ऊपर से इतनी ही लंबाई जान पड़ती थीं,—सीढ़ियाँ थीं। मालूम हुआ, यहाँ के खेत यही हैं। कोई बताता नहीं, तो उन सोपान-पंक्तियों को खेत कौन समझता!

अब तक निर्झर एक भी दिखाई नहीं पड़ा था। निर्झरों के द्वारा ही रसातल अपना स्नेह इस ऊँचाई के प्रति अर्पित करता है। यहाँ के लिये जैसे हम सब रसातल के ही पड़ोसी थे। इसी से निर्झर देखकर तृप्त होने की इच्छा थी। एक जगह एक नदी-सी दिखाई दे गई। पर कदाचित इन दिनों उसका कोई निर्जल व्रत था।

आगे किसी जगह दूर से एक क्षीण जलधारा देख कर बड़ा कौतूहल हुआ। पता नहीं, किस पुनीत सरिता का बाल्यकाल उसमें था। नाम-हीन, परिचय-हीन। इस धारा ने आगे चलकर किस विराट गरिमा को धारण किया है, यह हम से कोई नहीं बता सका। किसी बहुत बड़े लोक नायक को, किसी वंदनीय कविर्मनीष को, लौटकर हम उसके बाल्यकाल में देखें, चित्र में नहीं प्रत्यक्ष, तब जो पुलक हम में उठ खड़ी हो, वही इस जलधारा से मेरे मन में हुआ।

सहसा नीचे की ओर एक सड़क दिखाई दी। पूछा—यह दूसरा रास्ता कहाँ को है? बताया गया—"वही तो, जिसपर चले आ रहे हैं।" जान पड़ा सड़क को दूनर कर के जैसे कि किसी ने उस की तह कर दी हो! यहाँ अब हम बहुत ऊँचाई पर आगये हैं। नीचे की ओर खड्ड पर खड्ड और ऊपर हमारी गाड़ी सरपट दौड़ी जाती है। ड्राइवर ज़रा भी असावधान हुआ कि फिर क्या हो, कौन जानें। इन भयंकर गर्तों को देखकर चक्कर आता है। मैं ही नहीं, दूसरों को भी चक्कर आते हैं, यह जानकर संतोष की साँस लिये बिना नहीं रहा गया! एक जगह निचाई देखकर क्षणभर के लिये आखें झँप गईं। अपनी 'मंजुघोष' कविता का एक अंश याद हो आया। देव लोक से शंपा (बिजली) अपने स्वामी मेघ के साथ हिमालय पर जहाँ आती है, वहाँ एक जगह की निचाई देख कर उसे भय होता है। मेरी वह कल्पना, कोरी कल्पना नहीं है, इस विचार से आनंद का अनुभव हुआ।

इतनी ऊँचाई पर पहुँच गया हूँ कि नीचे के खड्डों में बादल दिखाई पड़ते हैं। आकाश हमारे नीचे है। दूर दूर तक, जहाँ तक दृष्टि जाती है, ऐसा जान पड़ता है कि शांत समुद्र हो। उस समुद्र में ही हम तैरे जा रहे हैं। इस समुद्र में तरंगाघात नहीं हैं। शांत, निश्चल, सुविस्तीर्ण! ऐसे समुद्र की पहले कल्पना नहीं की थी। पहाड़ हमारी दृष्टि से ओझल हो गया है। इस स्वनिर्मित समुद्र में जैसे उसने डुब की ली हो। अब फिर गिरिराज, और हमारी गाड़ी इस इमारत के पास पहुँच कर रुक गई। नैनीताल निकट ही है और उसी का यह चुंगी घर है। प्रकृति के विशाल क्रीड़ा क्षेत्रपर मनुष्यकृत यह रचना रुचिकर नहीं जान पड़ी। प्रत्येक यात्री को यहाँ एक रुपया कर चुकाना पड़ा।

आगे के मोटर स्टैंड का पहला ही दृश्य भीषण था। कुलियों के एक झुण्ड ने आकर मोटर यात्रियों पर हल्ला बोल दिया। जी एकदम घबरा उठा। कपड़े कुलियों के शरीर पर थे, पर क्या कपड़े ही उन्हें कहना चाहिए? किसी मरणासन्न वृद्ध को बालक कह सकें, तो उन चीथड़ों को भी हम कपड़े कह सकते हैं। "बाबू हम आपका सामान ले चलेंगे। हमें ले चलिये, हमें!"—उनकी इस कातर प्रार्थना में न जाने क्या बात थी कि जी काँप उठा। उसमें कातरता थी, उसमें धिक्कार था, उसमें भर्त्सना भी। क्या नहीं था उसमें?

पहला जो कुली सामने आ गया, उससे हाँमी भर देनी पड़ी। सबके योग्य सामान मेरे पास न थे। कुली सामान सँभाल ही

रहा था, इतने में उसका एक दूसरा भाई आ पहुँचा। पहला चाहता था कि हमीं सब सामान ले जायँगे, दूसरा कहता था—हम! अंत में एक का सामान दो में बाँट देना पड़ा। दूसरे ने कोई तर्क सुनना पसंद न किया। दोनों लड़-झगड़ कर रवाना हुये।

यह नैनीताल है लगभग एक मील लंबी झील। नीले रंग का शांत सरोवर। इस समय तरंगायित नहीं है। शांत है, सुस्मित है। अन्य सरोवरों की भाँति यहाँ स्नान और जल क्रीड़ा का उत्सव नहीं दिखाई दिया। दर्शन से ही यह शरीर और मनको शीतलता पहुँचाता है। जल-विहार के लिये कुछ नौकायें तट पर बँधी हैं। झीलके किनारे-किनारे चलकर यह पतली सड़क ऊपर चढ़ गई है, जिसे एक ओर के इस ऊँचेशैल को काटकर तैयार किया गया है। ऊपर सघन वृक्ष राशि हैं। बड़ी-बड़ी शिलायें अपना अर्द्धभाग कटवा कर अपनी जगह स्थिर हैं। भूकम्प के कठोर हाथों से कोई अदृश्य और अज्ञात इनमें से किसी को मचमचा दे, तो क्या हो? यहाँ इनके नीचे हम लोग जो चल रहे हैं, उनका क्या हो? प्रश्न ऐसा है कि इसे टाल ही देना चाहिये।

शीत यहाँ काफी है। गरमी के कमड़ों से काम न चलेगा। इसी समय अनेक महिलायें झुण्ड की झुण्ड दिखाई दीं। प्राचीनायें भी और आधुनिकायें भी। रंग-बिरंगे बारीक वस्त्र धारण किये हुए।

अपने डेरे पर आ पहुँचा हूँ। काफी सुन्दर स्थान है। स्वागत करने वालों से एक ही शिकायत। वे अतिथि के रूप में

मुझे लेना चाहते हैं। मैं चाहता हूँ, मैं उन्हीं में का एक ज.होऊँ। बाहरी जन होकर सन्मान और आदर विशेष मिलता है। परंतु घाटे में भी कम नहीं रहना पड़ता।

समुद्र तल से लगभग सात हजार फुट की ऊँचाई यह है। इसका मतलब यह हुआ कि सूर्य के इतने निकट पहुँच गया हूँ। साधारण न्याय से सूर्य का उत्ताप यहाँ अधिक होना चाहिये। पर बड़ों के संबंध में साधारण न्याय से विचार करना कदाचित् ठीक नहीं होता।

जहाँ से चला था, वहाँ इन दिनों जून का महीना है। और यहाँ इस जगह नवंबर, दिसंबर। बारह घंटे की यात्रा में ही महीनों की यह दूरी पार कर ली है। आग की भट्टी में तपते हुये लोहे को पानी में डुबोकर पक्का किया जाता है। मेरा शरीर लोहे का नहीं है। इसलिये कह नहीं सकता, इस परिवर्तन का उस पर क्या असर होगा।

सायंकाल मित्र महोदय के साथ भ्रमण के लिये निकला। यहाँ न इक्के-तांगों की खड़-खड़ है और न मोटरों का कटु कोलाहल। सवारी यहाँ घोड़े की है। नगर के मूल निवासी कितने हैं, कह नहीं सकता। दत्तक-निवासी ही अधिक दिखाई दिये। न जाने कहाँ कहाँ से आकर इकट्ठे हुये हैं।

झील के किनारे इस समय विशेष चहल-पहल रहती है। इसी के एक ओर यहाँ की कुलीन, अर्थात् बड़े लोगों की दूकानें हैं। पर वहाँ इस समय मौसम की तरह ही बाजार भी ठंडा था। इस रात्रि वेला में बिजली का प्रकाश जगमगा उठा है। इधर-उधर ऊँची चोटियों पर यत्र-तत्र छिटकी हुई कोठियों के बिजली के प्रदीप एक विचित्र छटा धारण किये हैं। इन ऊँची चोटियों के मिस जान पड़ता है, नक्षत्र-खचित आकाश का कोई दुपट्टा नीचे की ओर छहर आया हो।

*

रात में लगातार अविश्रांत बारिश होती रही। बंद कमरे के भीतर से ही वृक्षों का मर्मर रव और वृष्टिधारा की सनसना-हट अध जागते और जागते कानों से सुनता रहा।

सबेरे एक बंधु के बँगले की खोज में निकला। बादल इस समय साफ हो गया है। फिर भी यहाँ के बादल का विश्वास कौन करे? हाथ में छाता ले लेना ही उचित है। युद्ध में लोह-कवच और वृष्टि में छाता, अधिक नहीं तो कुछ सहायता तो करते ही है। अकेला ही निकल पड़ा हूँ। चढ़ाई और उतराई, उतराई और चढ़ाई। एक सड़क इधर को निकल गई है, दूसरी उधर को। आदमियों के नये-नये नमूने—छोटे और बड़े, सफेद और काले, सब के सब यहाँ-वहाँ आ-जा रहे हैं। इतना अधिक चल चुका हूँ, फिर भी मित्र के बँगले तक पहुँच नहीं सका।

यहाँ की निकटता भी हिमालय की भाँति लंबी-चौड़ी है। एक घंटा हुआ, डेढ़ घंटा हुआ और ये दो पूरे हो गये। वह बँगला अब भी कभी इधर और कभी उधर की आँख मिचौनी खेल रहा है। और अब ये बादल सिमिट आये हैं। मुक्त हस्त होकर इन्होंने उदार वर्षा से गिरिवन को मुखरित कर दिया है। मित्र का बँगला न मिलने से किसी तरह डेरे पर आ पहुँचा।

पानी पड़ता जाता है। ठंडी-ठंडी हवा वृक्षों पर अपने कर-स्पर्श से मर्मर-संगीत उत्पन्न करती है। जहाँ तक दृष्टि जाती है हरियाली ही हरयाली।

मेरा भाग्य प्रसन्न नहीं जान पड़ता। गिरिराज अपनी पुनीत यात्रा का अवसर मुझे नहीं देना चाहते। बारिश के पानी में मेरे पुराने रोग (दमा) के उभाड़ का भय है। आतिथेय महोदय बताते हैं कि एक विख्यात पुरुष, जो मेरे सहरोगी हैं, कुछ ही दिनों में यहाँ पाँच पौंड बढ गये हैं। कदाचित इसीलिये योगियों ने इस नागाधिराजा को अपनी तपोभूमि चुना हो! भूख-प्यास की व्याधि यहाँ उन्हें बहुत कृश नहीं करती। पर यह नैनीताल इन दिनों योगियों की नहीं, भोगियों की भूमि है।

*

जीवन में दो ही बार हिमालय के दर्शन का सौभाग्य मिला है। एक बार तब, जब कि यहाँ से सकड़ों मील दूर अपने कमरे में

बैठकर 'मंजुघोष' कविता लिख रहा था और दूसरी बार यहाँ इस समय नैनीताल में। जानकर लोग यही कहेंगे कि मैंने एक बार भी दर्शन नहीं किया। उनसे मुझे समझौता करना पड़ेगा। इस बार भले ही मैंने गिरिराज के दर्शन न किये हों, किंतु उस बार के संबंध में प्रश्न तक नहीं उठ सकता। उस कल्पना की वास्तविकता में मैं असंदिग्ध हूँ।

इस बार दर्शन हुये हों या न हुये हों, देवतात्मा का बहुत बड़ा प्रसाद लेकर यहाँ से उतर रहा हूँ। मेरे मन में घर के लिये उत्सुक-वेदना जाग उठी है। जान पड़ता है, स्वर्ग-विहार करने वाली आत्मायें पुण्य के क्षीण होने पर ही अनिच्छा के साथ पृथ्वी पर नहीं लौटतीं। पृथ्वी पर भी कुछ ऐसी गरिमा है। कुछ ऐसी स्नेह-माधुरी है। कुछ ऐसा आकर्षण है, जिसके कारण स्वेच्छा से ही उन्हें इसकी गोद में फिर-फिर आना पड़ता है।

असमय मैंने यह यात्रा की थी, इसलिये हिमालय के श्रीमंदिर की झलक तो आँख से दिखाई दे गई, पर उनका रूप दर्शन मुझे नहीं हुआ। वहाँ के लीला-निकेतन ने अपने पट मेरे लिये नहीं खोले। वहाँ की हिम-गंगा, वहाँ का कुसुम हाल, वहाँ की रंग-बिरंगी परिधान-सज्जा, वहाँ के क्षण-क्षण पर परिवर्तित प्रकृति चित्र, वहाँ के निर्झर-प्रताप, वहाँ की सरिताओं के उद्दाम नृत्य, वहाँ के पलायित प्रवाहों के ग्रीवा-भंग, मेरे देखने में नहीं आये। खिन्न मन से मैं नीचे उतर रहा हूँ!

बिदा के इस क्षण में न जाने किस अतुलनीय पुलक-भार से मैं समाच्छन्न हो उठा हूँ। न जाने वह कैसा है, न जाने वह कितना है, न जाने वह कहाँ का है, उसके संबंध में मैं कुछ कह नहीं सकता।

पंच-परमेश्वर

(लेखक:—श्री प्रेमचन्द, B.A.)

जुम्मन शेख़ और अलगू चौधरी में गाढ़ी मित्रता थी। साझे में खेती होती थी, कुछ लेन-देन में भी साझा था। एक को दूसरे पर अटल विश्वास था। जुम्मन जब हज करने गये थे तब अपना घर अलगू को सौंप गये थे; और अलगू जब कभी बाहर जाते जुम्मन पर अपना घर छोड़ देते थे। उनमें न खान-पान का व्यवहार था, न धर्म का नाता, केवल विचार मिलते थे; और मित्रता का यही मूल मंत्र है।

इस मित्रता का जन्म उसी समय हुआ जब दोनों मित्र बालक ही थे और जुम्मन के पूज्य पिता जुमेराती उन्हें शिक्षा प्रदान करते थे। अलगूने गुरुजी की बहुत सेवा की,—खूब रिकाबियाँ माँजी, खूब

प्याले धोये। उनका हुक्का एक क्षण के लिए भी विश्राम न लेने पाता था; क्योंकि प्रत्येक चिलम अलगू को आध घंटे तक किताबों से मुक्त कर देती थी। अलगू के पिता पुराने विचारों के मनुष्य थे। शिक्षा की अपेक्षा उन्हें गुरु की सेवा-शुश्रूषा पर अधिक विश्वास था। वे कहते थे कि विद्या पढ़ने से नहीं आती, जो कुछ होता है गुरु के आशीर्वाद से होता है। बस, गुरुजी की कृपा-दृष्टि चाहिए। अतएव, यदि अलगू पर जुमेराती शेख के आशीर्वाद अथवा सत्संगका कुछ फल न हुआ तो उसने यह मानकर संतोष कर लिया कि विद्योपार्जन में मैंने यथाशक्ति कोई बात उठा नहीं रखी; विद्या उसके भाग ही में न थी, तो कैसे आती?

मगर जुमेराती शेख स्वयं आशीर्वाद के क़ायल न थे। उन्हें अपने सोंटे पर अधिक भरोसा था। और, उसी सोंटे के प्रताप से आज आस-पास के गाँव में जुम्मन की पूजा होती थी। उनके लिखे हुए रेहननामे या बैनामे पर कचहरीका मुहर्रिर भी कलम न उठा सकता था। हल्केका डाकिया, कान्सटेबिल और तहसील का चपरासी,—सब उनकी कृपा की आकांक्षा करते थे। तएव,अ अलगू का मान उनके धन के कारण था तो जुम्मन शेख अपनी अनमोल विद्या ही से सब के आदर-पात्र बने थे।

२

जुम्मन शेख की एक बूढ़ी खाला (मौसी) थीं। उनके पास कुछ थोड़ी-सी मिलकियत थी। परंतु उनके निकट-संबंधियों में

कोई न था। जुम्मन ने लंबे-चौड़े वादे करके वह मिलकियत अपने नाम चढ़वा ली थी। जब तक दान-पत्र की रजिस्टरी न हुई थी तब तक खाला-जान का खूब आदर-सत्कार किया गया, खूब स्वादिष्ट पदार्थ उन्हें खिलाये गये, हलुवे-पुलाव की वर्षा-सी की गई, पर रजिस्टरी की मुहर ने इन खातिरदारियों पर भी मानो मुहर लगा दी। जुम्मन की पत्नी करीमन रोटियों के साथ कड़वी बातों के कुछ तेज़ तीखे सालन भी देने लगी। जुम्मन शेख भी निठुर हो गये। अब बेचारी खाला-जान को प्रायः नित्य ही ऐसी बातें सुननी पड़ती थीं—

"बुढ़िया न जाने कब तक जियेगी! दो-तीन बीघे ऊसर क्या दे दिया है, मानो मोल ले लिया है। बघारी दाल के सिवा रोटियाँ नहीं उतरतीं। जितना रुपया इसके पेट में झोंक चुके उतने से तो अब तक एक गाँव मोल ले लेते।"

कुछ दिन खाला-जान ने सुना और सहा, पर जब न सहा गया तब जुम्मन ने स्थानीय कर्मचारी के,—गृह-स्वामिनी के प्रबंध में दखल देना उचित न समझा। कुछ दिन तक और यों ही रो-धोकर काम चलता रहा। अंत में एक दिन खाला ने जुम्मन से कहा, "बेटा, तुम्हारे साथ मेरा निर्वाह न होगा। तुम मुझे रुपये दे दिया करो, मैं अपना अलग पका-खा लूँगी।"

जुम्मन ने धृष्टता के साथ उत्तर दिया, "रुपये क्या यहाँ फलते हैं?" खाला ने नम्रता से कहा, "मुझे कुछ रूखा-सूखा भी चाहिए कि नहीं?"

जुम्मनने गंभीर स्वर से जवाब दिया, "तो कोई यह थोड़े ही समझा था कि तुम मौत से लड़कर आई हो ?"

खाला बिगड़ गईं। उन्होंने पंचायत करने की धमकी दी। जुम्मन हँसे, जिस तरह कोई शिकारी हिरन को जाल की तरफ़ जाते देखकर मन ही मन हँसता है। वे बोले "हाँ, ज़रूर पंचायत करो। फैसला हो जाय। मुझे भी यह रात-दिन की खटपट पसंद नहीं।"

पंचायत में किस की जीत होगी, इस विषय में जुम्मन को कुछ भी संदेह न था। आस-पास के गाँवों में ऐसा कौन था जो उनके अनुग्रहों का ऋणी न हो ? कौन ऐसा था जो उनका शत्रु बनने का साहस कर सके ? किसमें इतना बल था जो उनका सामना कर सके ? आसमान के फरिश्ते तो पंचायत करने आवेंगे ही नहीं !

३

इसके बाद कई दिन तक बूढ़ी खाला हाथ में एक लकड़ी लिये आसपास के गाँवों में दौड़ती रही। कमर झुककर कमान हो गई थी, एक एक पग चलना दूभर था। मगर बात आ पड़ी थी। उसका निर्णय करना ज़रूरी था।

बिरला ही कोई भला आदमी होगा जिसके सामने बुढ़िया ने दुःख के आँसू न बहाये हों। किसी ने तो यों ही ऊपर मन से 'हूँ हाँ' करके टाल दिया, किसी ने इस अन्याय पर ज़माने को गालियाँ दीं; कहा, "क़ब्र में पाँव लटके हुए हैं; आज मरे कल दूसरा दिन; पर हवस नहीं मानती। अब तुम्हें क्या चाहिए ?

रोटी खाओ और राम राम करो। तुम्हें खेती-बारी से अब क्या काम? कुछ ऐसे सज्जन भी थे जिन्हें हास्य के रसास्वाद का अच्छा अवसर मिला। झुकी हुई कमर, पोपला मुँह, सन-से बाल। जब इतनी सामग्रियाँ एकत्र हों तब हँसी क्यों न आवे? ऐसे न्याय-प्रिय, दयालु, दीन-वत्सल पुरुष बहुत कम थे जिन्होंने उस अबला के दुखड़े को गौर से सुना हो और उसको सांत्वना दी हो। चारों ओर घूम-घाम कर बेचारी अलगू चौधरी के पास आई। लाठी पटक दी और दम लेकर बोली, "बेटा, तुम भी छन-भर के लिए मेरी पंचायत में चले आना।"

अलगू—मुझे बुलाकर क्या करोगी? कई गाँव के आदमी तो आवेंगे ही।

खाला—अपनी विपद तो सबके आगे रो आई हूँ। आने न आने का अख्तियार उनको है। हमारे ग़ाज़ी मियाँ गाय की गुहार सुनकर पीढ़ी पर से उठ आये थे। क्या एक बेकस बुढ़िया की फरियाद पर कोई न दौड़ेगा?

अलगू—यों आने को, मैं आ जाऊँगा; मगर पंचायत में मुँह न खोलूँगा।

खाला—क्यों बेटा?

अलगू—अब इसका क्या जवाब दूँ? अपनी खुशी। जुम्मन मेरे पुराने मित्र हैं। उनसे बिगाड़ नहीं कर सकता।

"पंचका हुकुम अल्लाहका हुकुम है। खालाजान जिसे चाहें बदें; मुझे कोई उज्र नहीं।"

खाला ने चिल्लाकर कहा, "अरे अल्लाहके बंदे! पंचों का नाम क्यों नहीं बता देता? कुछ मुझे भी तो मालूम हो!" जुम्मन ने क्रोध से कहा, "अब इस वक्त मेरा मुँह न खुलवाओ! तुम्हारी बन पड़ी है, जिसे चाहो पंच बदो।"

खालाजान जुम्मन के आक्षेप को समझ गई। वह बोली, "बेटा, खुदा से डरो। कैसी बात कहते हो? पंच न किसी के दोस्त होते हैं, न किसी के दुश्मन। और किसी पर तुम्हारा विश्वास न हो, तो जाने दो; अलगू चौधरी को तो मानते हो? लो, मैं उन्हीं को सरपंच बदती हूँ। जुम्मन शेख आनंद से फूल उठे; परंतु भावों को छिपा कर बोले, "अलगू चौधरी सही। मेरे लिए जैसे रामधन मिश्र वैसे अलगू।"

अलगू इस झमेले में न फँसना चाहते थे। वे कन्नी काटने लगे; बोले, "खाला, तुम जानती हो कि मेरी जुम्मन से गाढ़ी दोस्ती है।"

खाला ने गंभीर स्वर से कहा, "बेटा, दोस्ती के लिए कोई अपना ईमान नहीं बेचता। पंच के दिल में खुदा बसता है। पंचों के मुँह से जो बात निकलती है वह खुदा की तरफ़ से निकलती है।

अलगू चौधरी सरपंच हुए। रामधन मिश्र और जुम्मन के दूसरे विरोधियों ने बुढ़िया को मन में बहुत कोसा।

अलगू चौधरी बोले, "शेख जुम्मन, हम और तुम पुराने दोस्त हैं। जब काम पड़ा, तुमने हमारी मदद की है और हमसे भी जो कुछ बन पड़ी, तुम्हारी सेवा करते आये हैं। मगर, इस समय न तुम हमारे दोस्त, न हम तुम्हारे दोस्त। इस समय तुम और बूढ़ी खाला दोनों हमारी निगाह में बराबर हो। तुमको पंचों से जो कुछ अर्ज करना हो करो।"

जुम्मन को पूरा विश्वास था कि अब बाज़ी मेरी है। अलगू यह सब दिखाने की बातें कर रहा है, अतएव शांत-चित्त होकर बोले—

"पंचो, तीन साल हुए, खालाजान ने अपनी जायदाद मेरे नाम हिबह कर दी थी। मैंने उन्हें हीन-हयात खाना कपड़ा देना कबूल किया था। खुदा गवाह है कि आज तक मैंने ख़ाला-जान को कोई तकलीफ़ नहीं दी। मैं उन्हें अपनी माँ समझता हूँ। उनकी ख़िदमत करना मेरा फ़र्ज़ है। मगर औरतों में ज़रा अनबन रहती है। इस में मेरा क्या बस है? ख़ाला-जान मुझ से माहवार खर्च अलग माँगती हैं। ज़ायदाद जितनी है वह पंचों से छिपी नहीं है। उससे इतना मुनाफ़ा नहीं होता कि मैं माहवार खर्च दे सकूँ। इसके अलावा हिबहनामे में माहवार खर्च का कोई ज़िक्र नहीं, नहीं तो मैं भूलकर भी इस झमेले में न पड़ता।

बस, मुझे यही कहना है। आइन्दा पंचों को अख़्तियार है, जो फ़ैसला चाहें करें।"

अलगू चौधरी का हमेशा कचहरी से काम पड़ता था। अतएव वह पूरा कानूनी आदमी था। उसने जुम्मन से ज़िरह करना शुरू किया। एक एक प्रश्न जुम्मन के हृदय पर हथौड़े की चोट की तरह पड़ता था। रामधन मिश्र इन प्रश्नों का मुग्ध हुए जाते थे। जुम्मन चकित थे कि अलगू को क्या हो गया है! अभी यह मेरे साथ बैठा हुआ कैसी कैसी बातें कर रहा था! इतनी ही देर में ऐसी कायापलट हो गई कि मेरी जड़ खोदने पर तुला हुआ है! न मालूम, कब की कसर यह निकाल रहा है। क्या इतने दिनों की दोस्ती कुछ भी काम न आवेगी?

जुम्मन शेख तो इसी संकल्प-विकल्प में पड़े हुए थे कि इतने में अलगू ने फैसला सुनाया—

"जुम्मन शेख़, पंचों ने इस मामले पर विचार किया। उन्हें यह नीति-संगत मालूम होता है कि खाला-जान को माहवार ख़र्च दिया जाय। हमारा विचार है कि ख़ाला की जायदाद से इतना मुनाफ़ा अवश्य होता है कि माहवार ख़र्च दिया जा सके। बस, यही हमारा फैसला है। अगर जुम्मन को ख़र्च देना मंजूर न हो तो हिबहनामा रद्द समझा जाय।"

५

सुनते ही जुम्मन सन्नाटे में आ गये। जो अपना मित्र हो वह शत्रु का व्यवहार करे और गले पर छुरी फेरे, इसे समय के हेर-फेर के सिवा और क्या कहें? जिस पर पूरा भरोसा था उसने समय पड़ने पर धोखा दिया। ऐसे ही अवसरों पर झूठे सच्चे मित्रों की परीक्षा हो जाती है। यही कलियुग की दोस्ती है! अगर लोग ऐसे कपटी धोखेबाज़ न होते, तो देश में आपत्तियों का क्यों प्रकोप होता? यह हैजा, प्लेग आदि व्याधियाँ इन्हीं दुष्कर्मों के दण्ड हैं!

मगर रामधन मिश्र और अन्य पंच अलगू चौधरी की इस नीति-परायणता की प्रशंसा जी खोलकर कर रहे थे। वे कहते थे—इसीका नाम पंचायत है! दूध का दूध और पानी का पानी कर दिया! दोस्ती दोस्ती की जगह है; मगर धर्म का पालन करना मुख्य है। ऐसे ही सत्यवादियों के बल पृथ्वी ठहरी हुई है; नहीं तो वह कब की रसातल को चली जाती।

इस फैसले ने अलगू और जुम्मन की दोस्ती की जड़ें हिला दीं। अब वे साथ-साथ बातें करते नहीं दिखाई देते। इतना पुराना मित्रतारूपी वृक्ष सत्य का एक झोंका भी नहीं सह सका। सचमुच वह बालू ही की ज़मीन पर खड़ा था।

उनमें अब शिष्टाचार का अधिक व्यवहार होने लगा। एक

दूसरे की आव-भगत ज़्यादह करने लगे। वे मिलते-जुलते थे, मगर उसी तरह जैसे तलवार से ढाल मिलती है।

जुम्मन के चित्त में मित्र की कुटिलता आठों पहर खटका करती थी। उसे हर घड़ी यही चिंता रहती थी कि किसी तरह बदला लेने का अवसर मिले।

६

अच्छे कामों की सिद्धि में बड़ी देर लगती है, पर बुरे कामों की सिद्धि में यह बात नहीं। जुम्मन को भी बदला लेने का अवसर जल्द ही मिल गया। पिछले साल अलगू चौधरी बटेसर से बैलों की एक बहुत अच्छी जोड़ी मोल लाये थे। बैल भी पछाई जाति के सुन्दर बड़े-बड़े सींगोंवाले थे। दैवयोग से, जुम्मन की पंचायत के एक महीने बाद, इस जोड़ी का एक बैल मर गया। जुम्मन ने दोस्तों से कहा, "यह दगाबाज़ी की सज़ा है। इनसान सब भले ही कर जाय, पर खुदा नेकबद सब देखता है।" अलगू को संदेह हुआ कि जुम्मन ने बैल को विष दिला दिया है। चौधराइन ने भी जुम्मन ही पर इस दुर्घटना का दोषारोपण किया। उसने कहा, "जुम्मन ने कुछ करा दिया है।" चौधराइन और करीमन में इस विषय पर एक दिन खूब ही वाद-विवाद हुआ। दोनों देवियों ने शब्द-बाहुल्य की नदी बहा दी। व्यंग्य, वक्रोक्ति, और उपमा आदि अलंकारों में बातें हुईं। जुम्मनने किसी तरह शांति स्थापित की। उसने अपनी पत्नी को डाँट-डपट कर समझा दिया। वे उसे उस

रण-भूमि से हटा भी ले गये। उधर अलगू चौधरी ने समझाने-बुझाने का काम अपने तर्कपूर्ण सोंटे से लिया।

अब अकेला बैल किस काम का? उसका जोड़ बहुत ढूँढ़ा गया, पर न मिला। निदान, यह सलाह ठहरी कि इसे बेच डालना चाहिए। गाँव में एक समझू साहु थे। वे इक्का-गाड़ी हाँकते थे। गाँव से गुड़-घी लादकर मंडी ले जाते, मंडी से तेल-नमक लाते और गाँव में बेचते। इस बैल पर उनका मन लहराया। उन्होंने सोचा, यह बैल हाथ लगे तो दिन-भर में बेखटके तीन-तीन खेपें हों। आजकल तो एक ही खेप के लाले पड़े रहते हैं। बैल देखा, गाड़ी में दौड़ाया, बाल-भौंरी की पहचान कराई, मोल-तोल किया और उसे लाकर द्वार पर बाँध ही दिया। एक महीने में दाम चुकाने का वादा ठहरा। चौधरी को भी गरज थी ही, घाटे की परवा न की।

समझू साहु ने नया बैल पाया तो लगे रगेदने। वे दिन में तीन-तीन चार-चार खेपें करते थे। न चारे की फिक्र थी न पानी की। बस, खेपों से काम था। मंडी ले गये, वहाँ कुछ सूखा भूसा सामने डाल दिया। बेचारा जानवर अभी दम भी न लेने पाया था कि फिर जोत दिया गया। अलगू चौधरी के घर था, तो चैन की बंसी बजती थी। बैलराम छठे छमा है कभी बहली में जोते जाते तब खूब उछलते कूदते और कोसों तक दौड़ते चले जाते थे। वहाँ बैलराम का रातिब था, साफ़ पानी, दली हुई अरहर और भूसे के साथ

खली खाते, और यही नहीं, कभी कभी घीका स्वाद भी चखने को मिल जाता था। शाम-सबेरे एक आदमी खरहरे करता, पोंछता और सहलाता था। कहाँ वह सुख-चैन, कहाँ यह आठों पहर की खपन! महीने-भर में ही वह पिस-सा गया। इक्के का जुआँ देखते ही उसका लहू सूख जाता था। एक एक पग चलना दूभर था। हड्डियाँ निकल आई थीं, पर था वह पानीदार, मारकी सहन न थी।

एक दिन चौथी खेप में साहुजी ने दूना बोझा लादा। दिन-भर का थका जानवर, पैर न उठते थे। उसपर साहुजी कोड़े फटकारने लगे। बस, फिर क्या था, बैल कलेजा तोड़कर चला। वह कुछ दूर दौड़ा और चाहा कि ज़रा दम ले लूँ; पर साहुजी को जल्द घर पहुँचने की फ़िक्र थी। अतएव उन्होंने कई कोड़े बड़ी निर्दयता से फटकारे। बैलने एक बार फिर जोर लगाया, पर अब की बार शक्ति ने जवाब दे दिया। वह धरती पर गिर पड़ा और ऐसा गिरा कि फिर न उठा। साहुजी ने बहुत पीटा; टाँग पकड़ कर खींचा, नथुनों में लकड़ी खोंस दी! पर कहीं मृतक भी उठ सकता है? तब साहुजी को शंका हुई। उन्होंने बैल को गौर से देखा; खोलकर अलग किया और सोचने लगे कि गाड़ी कैसे घर पहुँचे। वे बहुत चीखे-चिल्लाये, पर देहात का रास्ता बच्चों की आँख की तरह साँझ होते ही बंद हो जाता है। कोई नजर न आया। आसपास कोई गाँव भी न था। मारे क्रोध के उन्होंने

मरे हुए बैल पर और दुर्रे लगाये और कोसने लगे—अभागे ! तुझे मरना ही था, तो घर पहुँच कर मरता। समुरा बीच रास्ते में ही मर रहा। अब गाड़ी कौन खींचे ? इस तरह साहुजी खूब जले-भुने। कई बोरे गुड़ और कई पीपे घी उन्होंने बेचा था, दो ढाई सौ रुपये कमर में बंधे थे। इसके सिवा गाड़ी पर कई बोरे नमक के थे। अतएव छोड़कर जा भी न सकते थे। लाचार, बेचारे गाड़ी ही पर लेट गये। वहीं रत-जगा करने की ठान ली। चिलम पी, गाया, फिर हुक्का पिया। इस तरह साहुजी आधी रात तक नींद को बहलाते रहे; अपनी जान में तो वे जागते ही रहे, पर पौ फटते ही जो नींद टूटी और कमर पर हाथ रक्खा तो थैली गायब ! घबराकर इधर-उधर देखा तो कई कनस्तर तेल भी नदारद ! अफसोस में बेचारे ने सिर पीट लिया और पछाड़ खाने लगे। प्रातःकाल रोते-बिलखते घर पहुँचे। सहुआइनने जब यह बुरी सुनावनी सुनी तब पहले रोई, फिर बेचारे अलगू चौधरी को गालियाँ देने लगी,—निगोड़े ने ऐसा कुलच्छनी बैल दिया कि जन्म-भर की कमाई लुट गई।

इन घटना को हुए कई महीने बीत गये। अलगू जब अपने बैल के दाम माँगते तब साहु और सहुआइन दोनों ही झल्लाए हुए कुत्तों की तरह चढ़ बैठते और अंड-बंड बकने लगते—वाह ! यहाँ तो सारे जन्म की कमाई लुट-गई; सत्यानाश हो गया; इन्हें दामों की पड़ी है ! मुर्दा बैल दिया था, उसपर दाम माँगने चले हैं।

आँखों में धूल झोंक दी। सत्यानाशी बैल गले बाँध दिया। हमें निरा पोंगा ही समझ लिया। हम भी बनिये के बच्चे हैं। ऐसे बुध्दू कहीं और होंगे। पहले जाकर किसी गड़हे में मुँह धो आओ तब दाम लेना। न जी मानता हो तो हमारा बैल खोल ले जाओ। महीने-भर के बदले, दो महीने जोत लो। और क्या लोगे?

चौधरी के अशुभचिंतकों की कमी न थी। ऐसे अवसरों पर वे भी एकत्र हो जाते और साहुजी के भर्राने की पुष्टि करते। इस तरह फटकारें सुनकर बेचारे चौधरी अपना-सा मुँह लेकर लौट आते। परंतु, डेढ़ सौ रुपयों से इस तरह हाथ धो लेना आसान न था। एक बार वे भी गरम पड़े। साहुजी बिगड़ कर लाठी ढूँढ़ने घर चले गये। अब सहुआइनने मैदान लिया। प्रश्नोत्तर होते-होते हाथा-पाई की नौबत आ पहुँची। सहुआइनने घर में घुस कर किवाड़ बन्द कर लिये। शोर-गुल सुनकर गाँव के भले मानुस जमा हो गये। उन्होंने दोनों को समझाया। साहुजी को दिलासा देकर घर से निकाला। वे परामर्श देने लगे कि इस तरह सिर-फुटौवल से काम न चलेगा। पंचायत कर लो। जो कुछ तै हो जाय उसे स्वीकार कर लो। साहुजी राजी हो गये। अलगूने भी हामी भर ली।

७

पंचायत की तैयारियाँ होने लगीं। दोनों पक्षों ने अपने अपने दल बनाने शुरू किये। इसके बाद तीसरे दिन उसी वृक्ष के नीचे फिर पंचायत

बैठी। वही संध्या का समय था। खेतों में कौवे पँचायत कर रहे थे। विवाद-ग्रस्त विषय यह था कि मटर की फलियों पर उनका कोई स्वत्व है या नहीं; और जब तक यह प्रश्न हल न हो जाय तब तक वे रखवाले की पुकार पर अपनी अप्रमत्तता प्रकट करना आवश्यक समझते थे। पेड़ की डालियों पर बैठी शुक-मंडली में यह प्रश्न छिड़ा हुआ था कि मनुष्य को उन्हें बेमुरौवत कहने का क्या अधिकार है, जब उन्हें स्वयं अपने मित्रों को दगा देने में भी संकोच नहीं होता?

पंचायत बैठ गई तो रामधन मिश्र ने कहा—

"अब देरी क्यों, पंचों का चुनाव हो जाना चाहिए। बोलो चौधरी, किस किस को पंच बदते हो?"

अलगू ने दीन-भाव से कहा, "समझू साहु ही चुन लें।"

समझू खड़े हुए और कड़क कर बोले, "मेरी ओर से जुम्मन शेख।"

जुम्मन का नाम सुनते ही अलगू चौधरी का कलेजा धक-धक करने लगा; मानो किसी ने अचानक थप्पड़ मार दिया हो। रामधन अलगू के मित्र थे। वे बात को ताड़ गये। पूछा—क्यों चौधरी, तुम्हें कोई उज्र तो नहीं?

चौधरी ने निराश होकर कहा, "नहीं, मुझे क्या उज्र होगा!"

*

अपने उत्तरदायित्व का ज्ञान बहुधा हमारे संकुचित व्यवहारों का सुधारक होता है। जब हम राह भूलकर भटकने लगते हैं तब यही ज्ञान हमारा विश्वसनीय पथ-दर्शक बन जाता है।

पत्र-संपादक अपनी शांत-कुटीर में बैठा हुआ कितनी धृष्टता और स्वतंत्रता के साथ अपनी प्रबल लेखनी से मंत्रि-मंडल पर आक्रमण करता है! परंतु, ऐसे अवसर भी आते हैं जब वह स्वयं मंत्रि-मंडल में सम्मिलित होता है। मंडल के भवन में पग धरते ही उसकी लेखनी कितनी मर्मज्ञ, कितनी विचारशील, कितनी न्याय-परायण हो जाती है! इसका कारण उत्तरदायित्व का ज्ञान है।

नवयुवक युवावस्था में कितना उद्दण्ड हो जाता है। माता-पिता उसकी ओर से कितने चिंतित रहते हैं! वे उसे कुल-कलंक समझते हैं। परंतु, थोड़े ही समय में परिवार का बोझ सिर पर पड़ते ही वही अव्यवस्थित-चित्त उन्मत्त युवक कितना धैर्यशील, कितना शांत-चित्त हो जाता है! यह भी उत्तरदायित्व के ज्ञान का फल है।

जुम्मन शेख के मन में भी, सरपंच का उच्च स्थान ग्रहण करते ही, अपनी जिम्मेदारी का भाव पैदा हुआ। उन्होंने सोचा, मैं इस वक्त न्याय और धर्म के सर्वोच्च आसन पर बैठा हूँ। मेरे मुँह से इस समय जो कुछ निकलेगा वह देव-वाणी के सदृश है। और देव-वाणी में मेरे मनो-विकारों का कदापि समावेश न होना चाहिए। मुझे सत्य से जौ भर भी टलना उचित नहीं।

पंचों ने दोनों पक्षों से सवाल-जवाब करने शुरू किये। बहुत देर तक दोनों दल अपने अपने पक्ष का समर्थन करते रहे। पंचों में मत-भेद था। इस विषय में तो सब सहमत थे कि समझू को बैल का मूल्य देना चाहिए; परंतु दो महाशय इस कारण रिआयत करना चाहते थे कि बैल के मर जाने से समझू को हानि हुई। इसके प्रतिकूल, दो सभ्य मूल्य के अतिरिक्त समझू को कुछ दण्ड भी देना चाहते थे जिससे किसी को पशुओं के साथ निर्दयता करने का साहस न हो। अंत में जुम्मन ने फैसला सुनाया—

"अलगू चौधरी और समझू साहु, पंचों ने तुम्हारे मुआमले पर अच्छी तरह विचार किया। समझू को उचित है कि बैल का पूरा दाम दें। जिस वक्त उन्होंने बैल लिया, उसे कोई बीमारी न थी। अगर उसी समय दाम दे दिया जाता तो आज समझू उसे फेर लेनेका आग्रह न करते। बैल की मृत्यु केवल इस कारण हुई कि उससे बड़ा कठिन परिश्रम लिया गया और उसके दाने-चारे का कोई अच्छा प्रबंध न किया गया।"

रामधन मिश्र बोले, "समझू ने बैल को जान-बूझकर मारा है। अतएव उनसे दंड लेना चाहिए।"

जुम्मन बोले, "यह दूसरा सवाल है, हमको इससे कोई मतलब नहीं।"

झाड़ू साहु ने कहा, "समझू के साथ कुछ रिआयत होनी चाहिए।"

जुम्मन बोले, "यह अलगू चौधरी की इच्छा पर है। वे रिआयत करें तो उनकी भलमनसी है।"

अलगू चौधरी फूले न समाये। उठ खड़े हुए और जोर से बोले "पंच-परमेश्वर की जय।"

चारों ओर से प्रतिध्वनि हुई, "पंच-परमेश्वर की जय!"

प्रत्येक मनुष्य जुम्मन की नीति को सराहता था—इसे कहते हैं न्याय! यह मनुष्य का काम नहीं, पंच में परमेश्वर वास करते हैं, यह उन्हीं की महिमा है। पंच के सामने खोटे को कौन खरा बना सकता है?

थोड़ी देर बाद जुम्मन अलगू के पास आये और उनके गले लिपट कर बोले, भैया, जब से तुमने मेरी पंचायत की तब से मैं तुम्हारा प्राण-घातक शत्रु बन गया था। पर आज मुझे ज्ञात हुआ कि पंच के पद पर बैठ कर न कोई किसी का दोस्त होता है, न दुश्मन। न्याय के सिवा उसे और कुछ नहीं सूझता। आज मुझे विश्वास हो गया कि पंच की जबान से खुदा बोलता है।"

अलगू रोने लगे। इस पानी से दोनों के दिलों का मैल धुल गया; मित्रता की मुरझाई हुई लता फिर हरी हो गई।

कठिन शब्दार्थ

साझा-समान भाग का हक
हज करना-मक्के की यात्रा पर जाना
मांजना-धोना, साफ़ करना
रकाबी-उथली छोटी थाली, तश्तरी
कोई बात उठा न रखना-पूरा परिश्रम करना
कायल-माननेवाला
सोंटा-छड़ी
रिहननामा-बंधक-पत्र
दूभर-मुश्किल, कठिन
कब्र में पाँव लटकना-मौत के पास पहुँचना
हवस-इच्छा
बिगाड़-झगड़ा
कसर निकालना-बदला लेना
तावड़तोड़-बराबर
ताहयात-ज़िंदगी भर
बेकस-अनाथ
बेवा-विधवा
बैनामा-विक्रय-पत्र
मुहर्रिर-लेखक, मुंशी
क़लम उठाना-ग़लती निकालना
मिलकियत-ज़ायदाद, संपत्ति
मुहर लगाना (मुहा०)-बंद करना
बघारी-घी में डालकर छौंका गया
रात-दिन की खटखट-रात-दिन का झगड़ा
फ़रिश्ता-देवता
खेप-एक बार आना-जाना
लाले पड़ना-किसी चीज़ के लिए बहुत तरसना
भौंरी-चक्र या चिन्ह जो पशुओं के शुभ-अशुभ लक्षण पहचानने के लिए देखा जाता है
रगेदना-दौड़ाना, ज़्यादा काम लेना
बगली-रथ के आकार की बैल गाड़ी
रातिब-दाना
खरहरा-लोहे का ब्रश

आसामी-रैयत, प्रजा

पंच बदना-पंच मानना

वैमनस्य-मनमुटाव

तुम्हारी बन पड़ी है-तुम्हें मौक़ा मिला है

सर-पंच-प्रधान पंच

झमेला-झंझट

कन्नी काटना-बचना

बाज़ी-दाँव, शर्त

हिब्बानामा-दान-पत्र

अनबन-बिगाड़, विरोध

जिरह-ऐसी पूछताछ जो किसी से उसकी कही हुई बातों की सत्यता की जाँच के लिए की जाय

आव-भगत-स्वागत-सत्कार

गोई-जोड़ी

नेक-बद-अच्छा-बुरा

निदान-अंत में

खपन-परिश्रम

पानीदार-जीवटवाला, साहसी

दुर्रा लगाना-चाबुक मारना

ससुरा-एक प्रकार की गाली

रतजगा-रात-भर जागना

कनस्तर-टिन

नदारद-ग़ायब, चंपत

सुनावती-ख़बर

पोंगा-बेवकूफ़

बर्राना-बकना

अपना-सा मुँह लेकर लौटना-असफलता के कारण लज्जित होकर लौटना

हाथ धोना-निराश या लाचार होकर छोड़ देना

मैदान लेना-लड़ना

परामर्श-सलाह

सिर-फुटौवल-मारपीट

बेमुरौवत-कृतघ्न

सर्वोदय

(संकलित)

पूज्य बापू जब तक जीवित रहे तब तक हमेशा उन्होंने मानवता के उद्धार के लिए काम किया। उनकी हमेशा यही ख्वाहिश रही कि सारी दुनियाँ में सुख और शांति का राज्य हो। बापू का यह विश्वास था कि कोई मनुष्य, इतना पतित, दुष्ट या कमीना नहीं जिसका उद्धार हो ही नहीं सकता। इसी मूल सिद्धांत पर उन्होंने सर्वोदय की कल्पना की थी।

बापू तो सत्य और अहिंसा के पुजारी थे ही। यह विश्व-विदित बात है कि इन्हीं बुनियादी उसूलों से उन्होंने दुनियाँ को दिखा दिया कि महान् से महान् कार्य भी सत्य और अहिंसा के द्वारा कर सकते हैं। उनका हर कार्य इस बात का प्रमाण देता है। उनका अटल विश्वास था कि सत्य और अहिंसा के द्वारा संसार में भ्रातृभाव, परस्पर प्रेम, शांति और सहानुभूतियुत ऐक्य की भावना स्थापित हो सकती है।

प्रातःस्मरणीय बापू की हत्या के बाद सेवाग्राम में सभी राष्ट्रीय कार्यकर्ता मिले। ख़ासकर वे कार्यकर्ता जो रचनात्मक कार्यों में लगे थे, उनका एक सम्मेलन हुआ। उस सम्मेलन में देश के कोने कोने से रचनात्मक कार्य में लगे रहनेवाले सभी

प्रमुख व्यक्तियों ने भाग लिया था। विचार विनिमय के बाद सब ने मिलकर एक ऐसी संस्था की स्थापना की जिससे बापू के मनोगत भावनाओं को एक क्रियात्मक रूप दे सकें। इसी संस्था का नाम "सर्वोदय समाज" है।

सर्वोदय समाज का सारतत्व यह है कि सत्य और अहिंसा के आधार पर एक ऐसे समाज का निर्माण करना जिसमें जाति-पांति का कोई भेद न हो और समाज को पूर्णतया व्यक्तिगत तथा समूहगत विकास का पूर्ण अवसर मिले।

इस आदर्श की साधना के लिए निम्न-लिखित कार्यों का करना आवश्यक माना गया है।

खादी प्रचार, ग्रामोद्योग, सफ़ाई, शराबबंदी, जाति-पाँति का भेद मिटाना, हरिजनोद्धार, सांप्रदायिक झगड़ों का अंत करना, नई तालीम के कार्य-क्रम के अनुसार शिक्षण देना, खेतीबारी को उन्नत कराना, स्त्री-पुरुषों को जीवन के हर क्षेत्र में समान अधिकार प्राप्त कराना, प्रांतीय संकुचित भावना को मिटाना, रोगियों की सेवा, गोरक्षा, आदिम जातियों के विकास के लिए कोशिश करना, विद्यार्थियों को संघठित करना, दीन-दुखियों की सेवा करना आदि मुख्य मुख्य काम इस सर्वोदय के अंतर्गत हैं। हम कोई भी काम करें, मगर इस बात का ध्यान हमेशा रहे कि हमारे कार्य से किसी को कष्ट या दुख न हो, अपना और दूसरे का भला हो। यही "सर्वोदय" का अर्थ है।

इस "सर्वोदय समाज" का प्रथम वार्षिक सम्मेलन जब हुआ तो कार्यकर्ताओं ने मिलकर 'सर्वसेवा संघ' की स्थापना की। सर्वोदय समाज और सर्वसेवा संघ ये दोनों एक दूसरे से संबंधित हैं। इनके संबंध के बारे में पूज्य विनोबा जी से सब लोगों ने पूछा तो उन्होंने उन लोगों को यह बतलाया — "सर्वोदय समाज एक अपार सागर है तो "सर्व-सेवा संघ" उस सागर के पानी में व्याप्त नमक है। एक समान भावना रखनेवालों का समाज है तो दूसर एक सहकारी संघ है। सर्वोदय समाज लोक कल्याण की भावना से भावित होता है तो सर्व सेवा संघ उस भावना को कार्य में परिणत करनेवाले सेवकों की संस्था है।"

सर्वोदय का असली कार्य यह है कि सब से पिछड़े, पीड़ित, शोषित वर्ग के लोगों का उद्धार करना और नीति की बुनियाद पर मनुष्य-जीवन को खड़ा करना। अहिंसा सर्वोदय का प्राण है और सत्य उसकी शक्ति है। उसका राजनीतिक आदर्श है सर्व-राज्य अर्थात् सभी का राज्य और सारी दुनियाँ को एक परिवार बनाना उसका अंतिम आदर्श और ध्येय है।

भारतीय संस्कृति ही एक ऐसी संस्कृति है जो सर्व-समन्वय से विकसित हुई है। सांप्रदायिकता और फिरकेबंदी की भावना ने इस समन्वय की भावना को नष्ट कर दिया है, जो एक भारी कमी है। इसी से इस तरह की एक संस्था की आवश्यकता हुई। सर्वोदय का तत्वज्ञान ही समन्वयात्मक है। उक्त कमी को सर्वोदय द्वारा पूरा

कर सकते हैं। इसी सर्वोदय की भावना को दृष्टि में रखकर रचनात्मक कार्यों की योजना बनी है।

मानव-जीवन को शांति के साथ विमर्शा करनेवाले सभी महान् व्यक्तियों का यही संदेश है। आपने महात्मा रस्किन का नाम सुना होगा। उनकी पुस्तक "अंटु दि लास्ट" में उन्होंने इसी सर्वोदय की कल्पना को सारे संसार के एक मात्र धर्म के रूप में चित्रित किया है। इस तरह सब की कल्याण कामना सभी धर्मों में सभी देशों में मौजूद है। मतलब इतना ही कि मनुष्य स्वार्थवश जीवन का शांति-पूर्वक अध्ययन नहीं करता।

आज दुनिया के सभी लोग प्रकाश के लिए भारत की ओर देख रहे हैं। लड़ाई झगड़ों से दुनियाँ ऊब गयी है। शांति, प्रेम और सुख की खोज में इधर उधर भटक रही है। हिंसा से दुनिया तंग आयी है। अब वह अहिंसा की शरण में आना चाहती है।

भारत ने अपनी प्राचीन परंपरा का जीता जागता उदाहरण सत्य और अहिंसा के द्वारा दुनिया के सामने रखा है। जब सारी दुनियाँ इस आदर्श को अपनाना चाहती है तो हम अपने देशवासियों को क्यों अंधकार में पड़े रहने दें। हमारी संस्कृति प्राचीन है। हमारे विचार ऊँचे हैं।

बापू भारत में पैदा हुए। मगर वे केवल भारत के ही न रहे। सारी दुनिया के आदर्श बने। उन्होंने अपने जीवन में

जो मानवता की सेवा की वह सर्वोदय के ही ढंग की सेवा थी। उन्हीं का अनुसरण सर्वोदय का आदर्श है। इसमें कोई संदेह नहीं कि यदि गांधीजी के चरण-चिह्न पहचान कर सभी लोग कार्य करेंगे तो उन्नतिशील नव-समाज का अवश्य निर्माण होगा।

इस सर्वोदय के विचार के ज़रिये बापू ने मानव-जाति के लिए एक नई संस्कृति, एक नई सभ्यता का पवित्र संदेश दिया है जो सत्य और अहिंसा पर आधारित है।

इसलिए हमें सर्वोदय के कार्यक्रमों में किसी न किसी को अपनाना चाहिए और इस सर्वोदय की सुंदर कल्पना को कार्यान्वित करना चाहिए। ऐसा करने से हम समझ सकते हैं कि हमने भी अपना कर्तव्य किया है। कार्य के द्वारा ही हम उस कल्पना के सुंदर स्वर्ग-राज्य को मानवों की इस दुनियाँ में बसा सकते हैं।

कठिन शब्दार्थ

कमीना-नीच

बुनियादी उसूल-मूल सिद्धांत

सहानुभूतियुत ऐक्य भावना-Sympathetic feeling of oneness

रचनात्मक कार्य-Constructive work

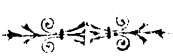

अरमानों की समाधि

ले०—श्री गंगाप्रसाद मिश्र, एम. ए., साहित्यरत्न

'चम्मो का लड़का मर गया मामू !' हरिहर ने चौपाल में आते हुये कहा। या अल्लाह ! गरीब बेवा का एक सहारा था वह भी न रहा ! मेरी राय मानो तो अब तुम लोग उस पर तरस खाओ, उसके गुनाहों पर मिट्टी डालो और मुर्दनी में चलकर शरीक हो जाओ—आर्द्र कंठ से काज़िम मियाँ बोले।

'कैसी बातें करते हो तुम काजिम भाई !' मुखियाने रोब-दाब से कहा—'यही तो वक्त है, जब उस बेहया औरत को अपनी करनी पर पश्चात्ताप होगा; जब उसे मालूम होगा कि समाज के नियमों को ठुकराने का क्या मजा मिलता है। अगर हम लोग इसी तरह ढील देते जायँगे तो आज जो उसने किया है; वही कल हमारे तुम्हारे घर की लड़कियाँ करेंगी।'

'बड़ी मुसीबत आ पड़ी गरीब पर; इसलिये मैंने कहा !' काज़िम भाई नम्रता से बोले—'उसका पति पहले ही न रहा और आज उसकी सारी उम्मीदों का चिराग़ बुझ गया। उसकी हालत रहम के काबिल है।'

'हरगिज़ नहीं !'—मुखिया कड़क कर बोला—क्यों उसने सब लोगों की बात न सुनी ? क्या ब्राह्मणों में कोई लड़का न था,

या उस माधो के सुरखाबका पर लगा था, जो यह बदमाश पूरी जात छोड़ कर उस ठाकुर के बच्चे के यहाँ बैठ गई। बड़ी मुहब्बत का जोश चढ़ा था। अरे सब की उम्र आती है, मगर सब लोग ऐसा ही करने लगे तो दुनियाँ क्यों कर चले? यों लड़कपन में गलती किससे नहीं हो जाती, मगर उससे कोई बड़े-बूढ़ों के सिर पर ठोकर मारकर उस पर मोहर थोड़े ही लगाता घूमता है।

'मगर उसका बच्चा....!' काजिम ने डरते-डरते कहा। वे हालाँकि बुजुर्ग आदमी थे, हर मामले में उनकी राय ली व मानी जाती थी, पर पंचों के खिलाफ़ जाने की तो उनकी भी हिम्मत न थी। चम्मो को दी हुई सजा को उनका दिल न क़बूल करता था, इसलिये वे बहुत दबते-दबते अपनी बात कहे जाते थे।

"बच्चा मर गया तो कौन दुनियाँ उलट गई? कौन अनोखी बात हो गई? अच्छा हुआ साँप का बच्चा न रहा, बड़ा होता तो किसी न किसी को डँसता ही। वह भी अपने बाप की तरह किसी पर डोरे डालता, किसी घर की इज्ज़त खाक में मिलाता। तुम तो ऐसे परेशान हो, गोया कयामत आ गई। क्या किसी का बच्चा कभी मरता नहीं!"

मगर बात चम्मो के लिये इतनी साधारण न थी। यों दुनिया में बच्चे रोज़ मरा ही करते हैं और अगर सारी दुनिया की तादाद पर गौर किया जाय तो चम्मो के उस कस्बे की आबादी से, रोज

मरनेवाले बच्चों की तादाद कई गुनी होंगी। पर उस चम्मो के दिल से पूछो, उस माँ से पूछो जिसका एकलौता बेटा उससे छिन गया हो, जिसके स्वर्गीय पति की एकमात्र निशानी उससे लूट ली गई हो। जिसके घर का अकेला चिराग़ बुझ गया हो। दूसरों के मन की, दूसरों के बच्चों के मरने की बात सुनकर हमें अफ़सोस होता है, मगर उसी मात्रा तक जिसे दूसरे शब्दों में हम यों कह सकते हैं—हमें यह अच्छा नहीं लगता! पर माँ का हृदय टुकड़े-टुकड़े हो जाता है—टुकड़े-टुकड़े हो जाने के मानी यह नहीं कि बहुत दुख होता है, बल्कि वास्तव में उसका दिल चाकचाक हो जाता है। चम्मो की दुनियाँ लुट गई थी, भविष्य अंधकार मय हो गया था। अपने उस लाल को मट्टी बन जाते देखकर वह बैठी जरूर रह गई थी, पर क्या उसकी हार्दिक इच्छा यह न थी कि उस के प्राण निकल जाते और वह यह दुखद दृश्य न देख सकती उसके प्राणों को भी लेकर यदि उसका बच्चा जिलाया जा सकता वह हँसते-हँसते दे देती, यह क्या कहने की बात है।

चम्मो बच्चे की मट्टी को कलेजे से लगाये बैठी थी, उस रुदन से सारा वायु मंडल गूँज रहा था। माँओं के हृदय अंदर ही अंदर घुटे जा रहे थे, पर किसी का यह साहस न था कि जाकर उस खिदुया से सहानुभूति के दो शब्द कहती। चम्मो का हृदय दुख विभोर था, पर उसके स्मृति पट पर पुराने चित्र आ रहे थे, जब वह चम्मो नहीं चमेली थी, सचमुच की चमेली की भाँति कोमल, सुर्ख

-मय और नयनाभिराम ! जब गाँव का प्रत्येक युवक उसकी चितवन का मोहताज था, जब हर हृदय वाला उसके रास्ते में अपनी आखें बिछाता था। फिर आँखों के सामने आ गया चौड़े कंधे और विशाल बाहु वाला माधव, जिसे चम्मो ने सारी कस्बे की सीखों को ठुकराते हुए गले का हार बनाया था और जिसके रहते हुये किसी भाई के लाल की हिम्मत उसकी तरफ नजर उठाकर देखने की न पड़ती थी। जिस माधव ने उसके जीवन को अनुराग के रंग में रंग दिया था और जिसे पाकर उसके दिन सोने और रातें चाँदी की बन गई थीं, फिर वह दिन याद आयी, जब माधव भी उसे छोड़कर चल बसा था और माधव के न रहने पर लाल को देख कर ही उसने अपने दिल को धीरज बँधाया था, पर आज वह क्या करे ? आज तो उसकी नाव अथाह सागर में पड़ी हुई दिखाई दे रही थी।

दोपहर में बच्चा मरा था, एक पहर से ऊपर चम्मो को रोते-चिल्लाते हो गया था, पर इस गाँव में एक भी ऐसा मनुष्य न था, जो इस भेड़ों के झुंड से अलग निकल कर आता और इस अनाथ अबला के आँसू पोंछता। इतनी अवहेलना, इतनी कठोरता की आशा चम्मो ने कभी न की थी।

आखिर जो माँ बच्चे को मरते देखकर व्याकुल हो जाती है, पागल हो जाती है, अपना सिर पीट लेती है, उसी चम्मो को परिस्थितियों ने, समय ने स्वयं धीरज बँधवाया, छाती पर पत्थर

रखना सिखलाया। उसने सोचा—अब चलना चाहिए, जो कुछ करना है, मुझे ही करना है। कफ़न का कपड़ा ले आऊँ और लपेटकर अपने लाल के साथ अपना आख़िरी कर्तव्य भी पालन कर डालूँ, पर लाल को यहाँ किस के भरोसे छोड़ जाऊँगी, साथ ही लेती चलूँगी।

लाल की मिट्टी को लिये हुये वह उठी। आह! वे चंचल हाथ-पैर जो हमेशा हवा में उठे क्रीड़ा करते थे, आज लुँज-से हो गये थे। जिन आखों की चमक देखकर उसका रोम-रोम खिल जाता था, वे सदा के लिये मुँद चुकी थीं। उसे आँचल में लपेटे वह चली और कस्बे के बजार में आई। पहली दूकान की सीढ़ियों के पास खड़ी होकर उसने कहा—'मोहन चाचा, मेरा लाल चल बसा, एक गज लट्ठा मुझे दे दो।'

'कपड़ा है कहाँ भाई! एक गिरह कपड़ा दुकान में नहीं है!' मोहन बोला।

'मेरे चाचा, जो दाम चाहो ले लो, एक गज कपड़ा मुझे दे दो!'

'कैसी बातें करती है तू, कपड़ा है ही नहीं, तो क्या पैदा करूँ?'

दूसरी दूकान पर पहुँची, हाथ जोड़े, घिघियाई; पर उत्तर नहीं मिला—'पागल हो गई है क्या? कपड़ा बजाजे में है कहाँ? अभी उस दिन पटवारी का भांजा मरा था, तो पुरानी धोती में लपेट कर ले जाया गया था बेचारा, और तुझे कपड़ा चाहिये। कहीं देखने को मिल रहा है कपड़ा।'

पंडित रामदीन उसे देखते ही दूर से चिल्लाये—'मुर्दा लेकर यहाँ न आना। कपड़ा मेरे यहाँ एक बित्ता भर भी नहीं है, चाहे जिसकी कसम ले ले!'

सब दूकानों से उसे यही उत्तर मिला। कपड़ा वाकई में सपना हो गया था। निकलता था तो या तो पुलिस या जमीन्दार के जूते पर या रात में एक के दस लेकर चोर बज़ार में। गरीब बे-कफ़न ही उठ रहे थे। पर चम्मो का दिल कैसे मानता, आह! वह अपने लाल को कफ़न के एक टुकड़े में नहीं लपेट सकती! उसके अरमानों का वह आशादीप बे-कफ़न दुनियाँ से जायगा। वह अपनी बसी पर रो पड़ी। उसे याद आयी, वह दिन जब उसकी माँ को मरने के बाद ज़री का दुशाला ओढ़ाया गया था। बाज़ार से निकलते समय उसके रोम-रोम ने चिल्ला कर कहा—'अरे बेईमानों! यह बे-दर्दी से जोड़ी दौलत न रहेगी, कौड़ी-कौड़ी को मोहताज न हो तो कहना। वह दिन जल्दी ही आवे, जब तुम्हारे बच्चे भी बे-कफ़न उठें, जिससे तुम्हें मेरे दिल की कसक का अंदाज़ा हो।'

मगर ये सारी बातें बेकार थीं, माँ के दिल की निकली वह आह हवा में समा गई, कभी किसी का उससे बाल भी न बाँका हुआ। 'कबिरा हाय गरीब की कबहुँ न खाली जाय!' वाली कहावत झूठी पड़ चुकी, अब हाय का कोई असर नहीं पड़ता।

चम्मो लाल को वैसे ही लेकर चल पड़ी। उसका दिल मसोस रहा था। आह! आज उसका राजा माधो होता तो उसको यह क्यों करना पड़ता, वह तो अकेला ही इस पूरे गाँव के मुर्दों को ढोकर मसान तक पहुँचा आता, और क्या पहुँचा नहीं आया था? पिछले प्लेग में उसने किस घर के दो-एक मुर्दे नहीं ढोये थे? और ये सब ऐसे कृतघ्न हैं कि उसी के बच्चे को हाथ लगाना पाप समझते हैं। उस शेर के जीते जी इन सियारों की हिम्मत न पड़ी थी, उसका बहिष्कार करने की, अब दुश्मनी निकाल रहे हैं, कायर कहीं के!

वह आगे बढ़ती जाती थी और श्मशान जैसे पीछे हटता जाता था। पाँव उसके मन-मन भर के हो रहे थे और उसका वह कोमल कुसुम बच्चा आज उसके लाख नहीं करते-करते मन को भारी लग रहा था। माँ अपने बच्चे को कभी बोझीला मानने को तैयार नहीं होती, दूसरे के कहने पर नजर लग जाने के भय से काँप उठती है, लड़ने को तैयार हो जाती है, पर आज तो उसके हाथ जवाब दिये जा रहे थे। फिर भी वह मानने को तैयार न थी, जैसे आज भी बच्चे के नजर लग जाने का भय उसे था।

जैसे-तैसे श्मशान आया तो चम्मो अपने बच्चे को उठाने के लिये अपनी उस फटी-पुरानी अकेली धोती से एक टुकड़ा फाड़ने को बैठी, जो मुश्किल से उसकी लज्जा ढक पा रही थी, जिसका एक-एक अलग तार जैसे चिल्लाकर यह कह रहा था कि उसने बहुत

दिनों सेवा की, अब उसे छुट्टी मिलनी चाहिए; चम्मो ने वह टुकड़ा फाड़ लिया; सुनते हैं, शैव्याने जब श्मशान में कफ़न फाड़ा था तो पृथ्वी हिलने लगी थी, लोकमात्र काँपने लगे थे, साक्षात् विष्णु भगवान प्रकट हुये थे, पर ऐसा कुछ न हुआ ! गरीब चम्मो की मदद को कोई न आया। कहाँ रानी शैव्या और कहाँ अदना बेवा चम्मो !

चम्मोने अपने लाल को उस फटे-पुराने कपड़े में लपेट लिया। वह अब भी तो वैसे ही प्यारा लग रहा था। उसकी आकृति में कोई खराबी न आई थी और उसका वह कुंदन-सा वर्ण अब भी उस फटे टुकड़े के छेदों में से चमक रहा था। कहाँ से दिल लायेगी वह जो इस अम्लान कुसुम को मिट्टी में लिटा देगी।

चम्मो को देखते ही कब्र खोदनेवाला उठा, बच्चे के आकार पर एक नजर उसने डाली और सिर झुकाकर उसी निर्विकार भाव से गड्ढा खोदने लगा, जैसे नये मकान के लिए नींव खोद रहा हो।

चम्मो का हृदय थमता रहा। कैसी साज-संभाल इस बच्चे की उसने की थी। एक क्षण को उसे गीले में न पड़ने दिया था, उसे सूखे में करके खुद गीले में पड़ी थी। अपने मकान का एक-एक छेद जाड़े में बच्चे के सर्दी खा जाने के भय से बंद कर दिया था। जरा-जरासी चीज़ को उसका मन मचल कर रह गया था, पर बच्चे के नुकसान के भय से वह हर बदपरहेजी से बची थी। गाँव में दवा न मिलने पर दो-दो, चार-चार कोस उसके लिये दवा लेने चली

गई थी। इतना सब उसने किया था, क्या इसी दिन के लिये

गड्ढा खोदकर मजदूर बोला—'ले आओ भाई ?'

यह आवाहन उस कार्य के लिये था जो उसके लिये आग में कूदने से ज्यादा कठिन था। उसे सुनकर उसके रोयें-रोयें से जैसे जान निकल गई, वह निर्जीव-सी बैठी रही।

कुछ देर रुककर मज़दूर बोला—"ले आओ भाई, यह तो करना ही है !' चम्मो उठी और लाल को लेकर उस गड्ढे में उतर गई। फिर उसे याद आया, इस बच्चे को वह सर्दी से कैसे बचाती रहती थी, ज्योतिषी ने उसके लिये चंद्रमा बुरा बताया था, तभी से कैसी सतर्क रहती थी और आज वही उसे ठंडी मिट्टी में लिटाने जा रही थी।

माँ न जाने कहाँ से वह दिल पाया कहाँ से वह हाथ पाये जो अपने लाल को वह उस पाले-सी जमीन पर लिटा सकी। उसे लिटाकर वह गड्ढे में ही खड़ी-खड़ी सिसकती रही, ऐसा मालूम होता था जैसे कलेजा बाहर निकल आयेगा। मज़दूर कई बार कहने पर वह बाहर आई।

मजदूर बोला—'थोड़ी मिट्टी तुम डाल दो।'

चम्मो ने दिल पर पत्थर रखकर वह भी किया और उसके बाद मिट्टी डाल दी गई—चम्मो के उस दिल के टुकड़े पर, आखों की ज्योति पर, घरके उजाले पर, जिन्दगी के अरमानों पर, ! साथ ही साथ मिट्टी डाल दी गई-उन गुनाहगारों के गुनाहों पर, जो अपने

मुँह की लाली के लिये दूसरों का खून चूस लेते हैं, जो अपनी तिजोरियों को भरने के लिये दूसरों का जीना भारी किये हुये हैं, जो अपने ऐशो-आराम के लिये दूसरों की जरूरतें भी पूरी नहीं होने देते।

—"दशमी" से सादर

कठिन शब्दार्थ

अरमानों-इच्छाओं
चौपाल-दालान, बैठक
बेवा-विधवा
तरस-रहम, दया
गुनाहों-दोषों, अपराधों
मुर्दनी-शव यात्रा
बेहया-बेशर्म
करनी-कर्तव्य
चिराग-दीपक
काबिल-योग्य, लायक
कबूल-स्वीकार
डोरे डालना-नजर डालना
खाक-राख, मिट्टी
गोया-जैसे
कयामत-प्रलय
तादाद-संख्या
गौर करना-ध्यान देना, सोचना
चाकचाक होना-टुकड़े-टुकड़े होना
सुरभिमय-सुगंधि से भरा
नयनाभिराम-देखने योग्य
लुंज-निःशक्त
गिरह-गज का सोलहवाँ हिस्सा
बजाजे-कपड़े की बजार
बित्ता-बालिश्त
मसान-स्मशान
वाकई-सचमुच
सियार-गीदड़
अदना-तुच्छ
बदपरहेजी-अनियमितता
पाले-सी-बर्फ के समान

सच्चा धर्म

ले०—सेठ गोविंददास, M.P.

पात्र-परिचय

पुरुषोत्तम	....	दिल्ली-निवासी एक महाराष्ट्र ब्राह्मण
अहिल्या	....	पुरुषोत्तम की पत्नी
संभाजी	....	शिवाजी का पुत्र
दिलावरखाँ	....	औरंगजेब की खुफ़िया जमात का एक सर्दार
रहमान बेग	....	दिलावरखाँ का मातहत

पहला दृश्य

स्थान—दिल्ली में पुरुषोत्तम के मकान का एक कमरा

समय—मध्याह्न के निकट

[कमरा एक छोटे से मकान के एक छोटे से कमरे सदृश दिखाई देता है; दीवारें स्वच्छता से पुती हुई हैं। दीवारों में जो दरवाजे खिड़कियाँ हैं उनसे बाहर की एक तंग गली के कुछ मकान दिखायी पड़ते हैं। एक दरवाजे से नीचे उतरने के लिए जीने की कुछ सीढ़ियाँ दिखाई देती हैं। कमरे की छत में काँच की कुछ हँडियाँ लटक रही हैं। कमरे की जमीन पर आधे में बिछायत है और आधी खाली। कमरे में पुरुषोत्तम बेचैनी से इधर उधर टहल रहा है। पुरुषोत्तम की अवस्था लगभग साठ

वर्ष की है। वह गेहुँएँ रंग और साधारण शरीर का मनुष्य है। सिर के बाल मराठी ढंग के हैं अर्थात् पीछे चौड़ी शिखा है, उसके चारों ओर छोटे-छोटे बाल और उसके चारों तरफ़ के बाल मुड़े हुए। मुख पर बड़ी-बड़ी मूँछें हैं। सारे बाल तीन चौथाई से अधिक सफेद हैं। वह लाल रंग का रेशमी उपरना ओढ़े हुए है। उसी रंग का रेशमी सोला पहने है। उसके सिर पर श्वेत चंदन का त्रिपुंड लगा हुआ है और वक्षस्थल पर मोटा यज्ञोपवीत दिखायी देता है। अहिल्या का प्रवेश। अहिल्या करीब ५५ वर्ष की अवस्था की गेहुँएँ रंग और स्थूल शरीर की स्त्री है। बाल बहुत से सफेद हो गये हैं। वह मराठी ढंग की लाल चारखाने की साड़ी और वैसी ही चोली पहने हुए है। कुछ सोने के आभूषण भी पहने है।]

अहिल्या—अभी भी·····अभी भी वह हाल है, कोई निर्णय नहीं हो सका ?

पुरुषोत्तम—(खड़े होकर) अहिल्या, यह प्रश्न कोई साधारण प्रश्न है !

अहिल्या—(बैठ कर) कम से कम तुम सदृश सत्यवादी व्यक्ति के लिए तो ऐसे प्रश्नों में असाधारणता नहीं होनी चाहिए। जन्मभर तुम्हारा सत्य-व्रत अटल रहा। तुम सदा कहते रहे हो कि जीवन में यदि मनुष्य एक सत्य का आश्रय लिये रहे तो वह सत्य स्वयं ही सारे प्रश्नों का निराकरण कर देता है, पर जब मनुष्य

सत्य का आश्रय छोड़ मिथ्या का आसरा लेता है, तभी तरह-तरह के प्रश्न उठ खड़े होते हैं।

पुरुषोत्तम—(बैठकर आश्चर्य से) सत्य का आश्रय छोड़ मिथ्या का आसरा ? मैं सत्य का आश्रय छोड़ मिथ्या का आसरा ले रहा हूँ ?

अहिल्या—और क्या कर रहे हो ? संभाजी को शिवाजी तुम्हारे पास रख गये हैं, यह क्या सच नहीं है ? जो लड़का तुम्हारे पास रहता है वह तुम्हारा भानजा है, यह कहना सच बोलना है ?

पुरुषोत्तम—संभाजी को संभाजी न कहकर अपना भानजा कहना, शिवाजी मेरे पास संभाजी को नहीं रख गये हैं, यह कहना, साधारण सच बोलने से कहीं बड़ा सत्य है।

अहिल्या—तुम्हारी सत्य-प्रियता अधिकांश दिल्ली में प्रसिद्ध है, इसी के कारण यवन तक तुम्हारा आदर करते हैं, हमारे विवाह को चालीस वर्ष हो चुके, परंतु आज तक मैंने तुम्हारे मुख से कोई मिथ्या वाक्य क्या, मिथ्या शब्द, और मिथ्या शब्द ही नहीं, मिथ्या अक्षर तक न सुना। वही तुम आज बड़ी से बड़ी मिथ्या बात कह कर उसे साधारण सत्य भाषण से बड़ा सत्य कह रहे हो।

पुरुषोत्तम—अहिल्या, हमारे शास्त्रों में सत्य और असत्य की व्याख्या बड़ी बारी की से की गई है। अनेक बार सत्य के स्थान

पर मिथ्या भाषण सत्य से भी बड़ी वस्तु होता है। जीवन में धर्म से बड़ी कोई चीज नहीं, धर्म की रक्षा यदि असत्य से होती है तो असत्य सत्य से बड़ा हो जाता है।

अहिल्या—धर्म की रक्षा! अब तो तुमने और बड़ी बात कह दी। संभाजी को अपना भानजा बनाने से तुम धर्म की रक्षा कर सकोगे? दिलावर खाँ कह गया है कि वह उसे तुम्हारा भानजा तब मानेगा, जब तुम उसके साथ बैठकर एक थाली में भोजन करोगे। ब्राह्मण होकर अब्राह्मण के साथ भोजन करने से धर्म-रक्षा हो सकेगी?

पुरुषोत्तम—(उठकर फिर टहलते हुए) अहिल्या, यही····· यही प्रश्न मुझे व्यथित किये हुए है। जीवन भर मैंने जिस प्रकार धर्म का पालन किया है उसे तुमसे अधिक और कोई नहीं जानता ·····नहीं·····नहीं·····भगवान् तुमसे भी अधिक जानते हैं। (फिर बैठकर) मैंने त्रिकाल-संध्या, तर्पण, हवन इत्यादि सारे ब्राह्मण-कर्म नियमपूर्वक किये हैं; शौच-अशौच का सदा पूर्ण विवेक रखा है; भक्ष्याभक्ष्य की ओर अधिक ध्यान दिया है; ब्राह्मण को छोड़कर किसी के हाथ का छुआ जल तक ग्रहण नहीं किया, वही·····वही मैं इस चौथेपन में अब्राह्मण के साथ बैठकर, एक ही थाली में, कैसे खाऊँगा, यह प्रश्न मुझे व्यथित·····अत्यधिक व्यथित किये हुए है। (फिर टहलते हुए) भगवान इस चौथेपन में क्या मेरी

परीक्षा लेना चाहते हैं ? एक अब्राह्मण के साथ भोजन करा मुझे भ्रष्ट करना चाहते हैं ?

अहिल्या—यदि तुमने अब्राह्मण के साथ भोजन किया तो तुम्हीं.....तुम्हीं भ्रष्ट न होगे, सारा कुटुंब भ्रष्ट हो जायगा। दो-दो कन्याएँ विवाह योग्य हो गयी हैं, किसी ब्राह्मण-कुटुंब में उनका विवाह न हो सकेगा। पुत्र का विवाह हो चुका है, तो क्या हुआ ? उसकी संतान तक भ्रष्ट हो जायगी, उसका न यज्ञोपवीत होगा और न ब्राह्मणों में विवाह-संस्कार।

पुरुषोत्तम—(अहिल्या के निकट बैठकर, उसकी ओर देखते हुए) तब...तब क्या करूँ ?

अहिल्या—मैंने तो कहा—जन्म भर जिसके आश्रय में रहे हो, उस सत्य को न छोड़ो। औरंगजेब के सदृश बादशाह के राज्य में, उसकी राजधानी में, रहते हुए हिंदू और ब्राह्मण होते हुए भी, तुम यह सफल-जीवन उसी सत्य के आश्रय के कारण बिता सके हो, इस चौथेपन में वह आसरा छोड़ने से बुरी और कोई बात नहीं हो सकती, विशेषकर तब जब उस आसरे का सुफल तुम देख चुके हो। धर्म की टेढ़ी-मेढ़ी व्याख्याओं में पड़ कर अपना जीवन भर का सीधा मार्ग छोड़ अपने और अपने कुटुंब को नष्ट मत करो।

पुरुषोत्तम—तो मैं यह कह दूँ कि वह लड़का शिवाजी का पुत्र संभाजी है, मेरा भानजा नहीं। मिठाई की टोकरी में

छिपकर दिल्ली से भागते समय शिवाजी उसे मेरे पास छोड़ गये हैं।

अहिल्या—कम से कम तुम्हें सत्य बात के कहने में पशोपेश होना ही न चाहिए।

पुरुषोत्तम—और इसका परिणाम क्या होगा ?

अहिल्या—परिणाम जो कुछ हो तुम सदा कहते नहीं रहे हो कि सत्य बोलने के सम्मुख परिणाम की ओर मनुष्य को दृष्टि ही नहीं डालना चाहिये ?

[पुरुषोत्तम सिर नीचा कर विचार-मग्न हो जाता है; कुछ देर निस्तब्धता।]

पुरुषोत्तम—(एकाएक सिर उठाकर) नहीं·····नहीं·····नहीं नहीं·····यह कभी नहीं हो सकता, यह कभी नहीं हो सकता। यह·····यह विश्वास घात होगा;·····ऐसा·····ऐसा पातक, जिससे बड़ा पातक संभव ही नहीं। यह·····यह शरणागत का बलिदान होगा; ऐसा·····ऐसा दुष्कर्म, जिससे बड़ा दुष्कर्म हो नहीं सकता।

अहिल्या—पर दूसरी ओर तुम सत्य को तिलांजलि दे रहे हो·····अब्राह्मण के साथ भोजन कर धर्म-भ्रष्ट होने का प्रश्न तुम्हारे सम्मुख है और स्वयं के भ्रष्ट होने का ही नहीं, पर सारे कुटुंब के नष्ट हो जाने का····

पुरुषोत्तम—[उठकर टहलते हुए] ओह !····ओह !

लघु-यवनिका

*

दूसरा दृश्य

स्थान—दिल्ली की एक गली

समय—मध्याह्न के निकट

[तंग गली के कुछ मकान दिखायी पड़ते हैं। दिलावरखाँ और रहमानबेग खड़े हैं। दोनों अधेड़ अवस्था और गेहुँएँ रंग के ऊँचे पूरे व्यक्ति हैं। दिलावरखाँ के दाढ़ी भी है। दोनों उस समय की सैनिक वरदी लगाये हुए हैं।]

दिलावरखाँ—(विचारते हुए) पंडित पुरुषोतमराव झूठ बोलेंगे ऐसा····ऐसा यकीन तो नहीं होता।

रहमानबेग—जनाब, तमाम देहली में कौन ऐसा होगा, जो उन्हें जानता हो और यह मानता हो कि वे कभी भी झूठ बोल सकते हैं।

दिलावरखाँ—(उसी प्रकार विचारते हुए) लेकिन, रहमानबेग, वह लड़का दक्खनी बिरेहमन दिखलाता नहीं।

रहमानबेग—सिर्फ सूरत से यह कह सकना कि कौन बिरेहमन और कौन नहीं, यह तो एक बड़ी मुश्किल बात है।

[कुछ देर निस्तब्धता। दिलावरखाँ गंभीरता से सोचता रहता है और रहमानबेग उसकी तरफ देखता है।]

रहमानबेग—(कुछ देर बाद) फिर आपने तो पंड़ित की बात पर ही यकीन करके मामले को नहीं छोड़ दिया, आपने तो उसे बहुत बड़ा सुबूत देने के लिए कहा है। पुरुषोत्तमराव की बात ही काफी है, फिर अगर वह उस लड़के के साथ बैठकर खाना खा लेता है, तब तो शक की गुंजाइश ही नहीं रह जाती।

दिलावरखाँ—(सिर उठाकर) हाँ; कोई बिरेहमन किसी नीची क़ौम के साथ बैठकर थोड़े ही खा सकता है।

रहमानबेग—और दक्खनी बिरेहमन मराठा के साथ, चाहे जान निकल जाय तो भी न खायगा।

दिलावरखाँ—पुरुषोत्तमराव के मानिंद बिरेहमन तो कभी नहीं।

रहमानबेग—कभी नहीं, कभी नहीं।

दिलावरखाँ—(ऊपर की तरफ़ देखकर) तो दोपहर तो हो रहा है। पूजा-पाठ के बाद उसने दोपहर को ही खाने के वक्त बुलाया था।

रहमानबेग—हाँ, वक्त हो रहा है, चलिए, चलिए।

[दोनों का प्रस्थान।]

लघु यवनिका

तीसरा दृश्य

स्थान—पुरुषोत्तम के मकान का एक कमरा

समय—मध्याह्न

[दृश्य पहले दृश्य के सदृश ही है। पुरुषोत्तम और अहिल्या बैठे हुए हैं। अहिल्या का मुख प्रसन्नता से खिल-सा गया है, परन्तु पुरुषोत्तम के मुख पर वैसे ही उद्विग्नता दृष्टि गोचर होती है। पुरुषोत्तम पृथ्वी की ओर देखा रहा है]

अहिल्या—(ऊपर की ओर देखकर) धन्यवाद·····अगणित बार धन्यवाद है भगवान् को, अन्त में सत्य की उसने विजय करा दी। (पुरुषोत्तम की ओर देख) दिन भर का भूला भटका यदि रात को भी घर लौट आवे तो वह भूला नहीं कहलाता। उद्वेग के कारण तुमने एक बार मिथ्या अवश्य बोल दिया, पर देर·····बहुत देर नहीं हुई, अभी भी समय था। दिलावरखाँ के आने के पहले तक समय था। अब····उससे सारी बातें सचमुच कह देने पर मिथ्या-भाषण के पाप से तुम मुक्त हो जाओगे। जन्मभर जिस सत्य का आश्रय रखा है उसी की शरण में रहने से कोई आपत्ति भी न आयेगी!

[पुरुषोत्तम कोई उत्तर नहीं देता। अहिल्या उसकी ओर देखती रहती है। कुछ देर निस्तब्धता

अहिल्या—[कुछ देर बाद, पुरुषोत्तम की ओर देखते हुए] देखा·····देखा नहीं, एक·····केवल एक बार सत्य का आसरा

छोड़ते ही कैसी·····कैसी महान् आपत्ती आई। एक मिथ्या को सत्य सिद्ध करने के प्रयत्न में कितनी मिथ्या बातें कहनी पड़ती हैं। तुम सदृश सत्यवादी से अपने कथन की पुष्टि के लिए प्रमाण माँगा गया, ऐसा वैसा प्रमाण नहीं, भयङ्कर प्रमाण, महा भयङ्कर प्रमाण! तुम्हारा मराठा के साथ, एक अब्राह्मण के साथ, एक थाल में भोजन! ओह। यह·····यह कभी सम्भव था।

[पुरुषोत्तम फिर कुछ नहीं बोलता। पर दृष्टि उठाकर, अहिल्या की ओर देखने लगता है। अहिल्या चुपचाप उसकी ओर देखती है। कुछ देर निस्तब्धता।]

अहिल्या—(कुछ देर बाद) जन्म भर का सारा पूजन-अर्चन समाप्त हो जाता। जीवन भर के सारे नियम-व्रत भंग हो जाते। न जाने कितने जन्मों के पुण्यों के कारण ब्राह्मण कुल में जन्म लिया था और ऐसे शुद्ध ब्राह्मण कुल में। फिर इस जन्म में भी ब्राह्मण-धर्म का कैसा पालन किया था। कभी संध्या न छोड़ी, कभी तर्पण न त्यागा, कभी हवन न छोड़ा, किसी का छुआ जल तक पान न किया था। सब·····सब चला जाता। स्वयं····· स्वयं ही भ्रष्ट न होते, परंतु·····परंतु सारा कुल भ्रष्ट हो जाता, लड़कियाँ कुँआरी रह जातीं। लड़के की संतति अब्राह्मण हो जाती। (कुछ रुककर) होता·····होता, कैसे ऐसा? जन्म भर का सत्कर्म पल भर में नष्ट कैसे हो जाता? भगवान् कैसे होने देते?

[पुरुषोत्तम फिर कुछ नहीं बोलता, पर चुपचाप उठकर टहलने लगता है। अहिल्या कुछ देर तक बैठे-बैठे उसकी तरफ देखती रहती है और फिर उठ कर उसी के साथ टहलने लगती है।]

अहिल्या—[टहलते, टहलते] और फिर यह सब किसी अपने के लिए नहीं, दूसरे·····दूसरे के लिए।

[पुरुषोत्तम चुपचाप खड़े होकर अहिल्या की ओर देखने लगता है। अहिल्या भी खड़ी हो जाती है।]

अहिल्या—हाँ, क्या·····क्या प्रयोजन है, हमें शिवाजी से और उसके इस पुत्र संभाजी से? दूसरे के लिए हम क्यों अपना इह लोक और परलोक बिगाड़ें, स्वयं नष्ट हों और अपने कुल को नष्ट करें? [कुछ रुक कर] सोचा,·····जरा सोचो तो कहीं औरंगजेब को पता लग जाय कि तुमने शिवाजी के पुत्र को आश्रय दिया और·····और उसे बचाने के लिए झूठ बोले·····और ·····और उस झूठ को सत्य सिद्ध करने के लिए अपने धर्म-कर्म की भी परवाह न कर उसके साथ एक थाल में भोजन तक किया, तो·····तो·····औरंगजेब के सदृश बादशाह क्या करे तुम्हारा और हमारे सारे कुटुंब का?

[पुरुषोत्तम फिर भी कुछ न कह टहलने लगता है। अहिल्या भी उसके साथ टहलती है। कुछ देर निस्तब्धता।]

अहिल्या—(कुछ देर बाद) ठीक·····ठीक समय भगवान् ने तुम्हें सुबुद्धि दी। सारा हाल सच-सच कह देने से अच्छा निर्णय

हो ही नहीं सकता था। परलोक बचा, क्योंकि मराठा के साथ खाने से जो धर्म जाता वह धर्म बच गया। इहलोक बचा, क्योंकि राज्य-भय नहीं रह जायगा। इतना·····इतना ही नहीं, संभाजी को पाते ही,·····तुम्हारे ज़रिये पाते ही·····औरंगजेब कितना ·····कितना खुश होगा तुम पर!·····कदाचित्·····कदाचित् तुम मनसबदार हो जाओ; तुम न भी हुए·····अर्थात् तुमने यदि मनसबदारी अस्वीकृत भी कर दी, तो·····तो मनसबदार हो सकता है हमारा लड़का। ····अरे! उन लड़कियों का संबंध तक अच्छे से अच्छे स्थान पर हो सकेगा। ····कितना····कितना परिश्रम तुम कर चुके हो इन लड़कियों के लिये योग्य वर ढूँढ़ने का। बादशाह·····हाँ, बादशाह की कृपा के पश्चात् कौन·····कौन वस्तु दुर्लभ रह जायगी? (कुछ रुककर) और·····और यह सब होगा किस कारण·····उसी·····उसी सत्य की शरण के कारण, जिसका जीवन·····हाँ, जीवन भर तुमने आश्रय रखा है।

(नेपथ्य में 'पंडित जी, पंडित जी!' शब्द होता है)

अहिल्या—(जल्दी से) लो, लो, कदाचित् दिलावरखाँ आ गया। अब·····अब सब बातचीत स्पष्ट रूप में कर लो उससे···· (शीघ्रता से प्रस्थान।)

पुरुषोत्तम—(जिसके मुख का रंग ही दिलावरखाँ की आवाज सुन और ही हो गया है, गला साफ करते हुए खिड़की के पास जा,

मुख बाहर निकाल, नीचे देखते हुए) अहाहा ! दिलावरखाँ साहब ! आइए, आ जाइए ।

[दिलावरखाँ और रहमानबेग का प्रवेश ।]

पुरुषोत्तम—आइए, आइए, मैं पूजा से उठ आप ही लोगों का रास्ता देख रहा था । बैठिए, बैठिए ।

दिलावरखाँ—[बिछायत पर बैठते हुए] आप भी तो बैठिए, पंडित जी ।

[दिलावरखाँ और रहमान बेग बिछायत पर बैठ जाते हैं ।]

पुरुषोत्तम—पूजा के पश्चात् भोजन तक मैं किसी वस्त्र आदि का स्पर्श नहीं करता । पहले आप को झंझट से मुक्त कर दूँ ।

दिलावरखाँ —(कुछ सहमते हुए) आपके मुआफ़िक मुआजिज शख्स के लिए जो सुबूत मैंने माँगा उसकी कोई ज़रूरत तो नहीं है, आपकी बात ही सुबूत होनी चाहिए, लेकिन·····लेकिन आप जानते हैं कि ये सारे सियासी मामलात·····

पुरुषोत्तम—नहीं, नहीं, आप कोई संकोच न कीजिए। अपने कर्तव्य का पालन करना धर्म ही है । मैं·····मैं भी आपको पूर्ण रूपसे संतुष्ट कर दूँगा । (जिस दरवाजे से अहिल्या गयी है उसी से जाता है ।)

रहमानबेग—जनाब, अब भी शक की कोई गुंजाइश

दिलावरखाँ—वह खाय तो उस लौंडे के साथ पहले मेरे सामने ।

रहमानबेग—पर खाने के बाद ?

दिलावरखाँ—हाँ, खाने के बाद तो शक की कोई गुंजाइश नहीं रहनी चाहिए ।

[दिलावरखाँ और रहमानबेग उत्कंठ से जिस दरवाजे से पुरुषोत्तम गया है उस दरवाजे की ओर देखते हैं । पुरुषोत्तम जी एक हाथ में परसी हुई थाली और दूसरे हाथ में जल का कलश लिये हुए प्रवेश । थाली में भात, दाल, शाक इत्यादि परसे हुए हैं । पुरुषोत्तम की सारी उद्विग्नता नष्ट हो, उसका मुख प्रसन्नता से चमक रहा है । उसके पीछे-पीछे संभाजी आता है । पुरुषोत्तम बिना बिछायत की भूमि पर थाली रखता है, उसी के निकट जल का कलश । थाली के दोनों ओर पुरुषोत्तम और संभाजी बैठ जाते हैं । पुरुषोत्तम भोजन का थोड़ा-थोड़ा अंश निकाल जमीन पर रख थाली के चारों ओर जल छिड़कता है ।]

पुरुषोत्तम—(जल छिड़कते हुए) 'सत्यन्वरितेन परिषिंचामि, (अब आचमन करते हुए) 'अमृतो पस्तरण मसि'

[अब पुरुषोत्तम और संभाजी दोनों उसी थाली में से खाना आरंभ करते हैं ।]

पुरुषोत्तम—(खाते खाते) कहिए खाँ साहब, अब——अब भी आपको विश्वास हुआ या नहीं कि विनायक मेरा भानजा है ?

[दिलावरखाँ का मुख शर्म से झुक जाता है। रहमानबेग कभी दिलावरखाँ की तरफ़ देखता है और कभी पुरुषोत्तम की ओर]

— यवनिका —

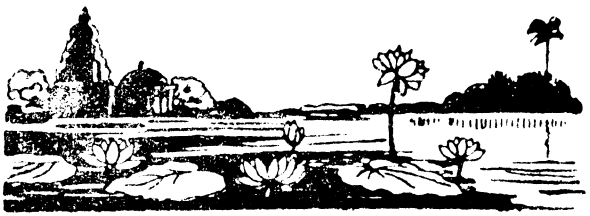

SOLE AGENTS :
K. SEETHARAMA SETTY & SON
Prop. SRI NANJUNDESWARA BOOK DEPOT
AVENUE ROAD CROSS, BANGALORE-2